नटी की पूजा

नटी की पूजा

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

(भगवती प्रसाद चन्दोला द्वारा अनुवादित)

विश्वभारती-ग्रन्थालय

२१०, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता ।

विश्वभारती—ग्रन्थनविभाग

२१०, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता ।

प्रकाशक—श्रीकिशोरीमोहन साँतरा ।

नटी की पूजा

प्रथम संस्करण—भाद्रपद, सं० १९९६

मूल्य—१) रुपया

शान्तिनिकेतन प्रेस, शान्तिनिकेतन, (वीरभूम) ।

प्रभातकुमार मुखोपाध्याय द्वारा मुद्रित ।

भूमिका

विश्वकवि के 'नटीर पूजा' नामक बंगला नाटक का यह हिन्दी अनुवाद है। इस नाटक की कथा-वस्तु बौद्धकालीन है। भारतीय इतिहास में यह युग बड़े महत्त्व का है। तब बुद्ध के संन्यास-प्रधान धर्म का नवीन आदर्श प्राचीन समाज-व्यवस्था की जड़ें हिला कर एक नए ढंग के जीवन की नींवें दे रहा था। चारों ओर अहिंसा और त्याग की गूँज थी। राजकुल के लोग तक बौद्ध भिक्षुओं के सामने सिर झुकाते देखे जाते थे। यह एक महान् क्रान्ति थी।

किन्तु वर्त्तमान नाटक में कवि ने इतिहास की कारा से एक नई दुनिया खोल कर सामने रख दी है। वह है नारी की दुनिया। नाटक में सब नारी-पात्र हैं। हमें उन के द्वारा उपर्युक्त क्रान्ति को एक बिलकुल भिन्न दृष्टिकोण से देखने का अवसर मिलता है। महारानी लोकेश्वरी, जो स्वयं अनन्य बुद्ध-भक्त हैं, देखती हैं कि बौद्ध-धर्म की नई जीवन-व्यवस्था ने नारी की दुनिया को तोड़ कर उस के परम्परागत सुव्यवस्थित गृह-जीवन के नैसर्गिक अधिकार को मिट्टी में मिला दिया है। व्यापक जीवनानुभूति की प्रेरणा ने घर के जीवन को चौपट कर डाला है। संन्यास धर्म की लहरों ने नारी को शून्य असहाय जीवन के एक सूखे रेतीले तट पर दे पटका है। अतः

नारी ने लोकेश्वरी के रूप में विद्रोह किया। पर लोकेश्वरी का हृदय द्विधा से खाली नहीं। बाहर से बुद्ध को अस्वीकार करते हुए भी उस में बौद्धधर्मानुराग कूट-कूट कर भरा है। पति के सिंहासन परित्याग करने, और पुत्र के गोद से छीने जाने तथा भिक्षु बना दिए जाने के कारण उस के हृदय में बुद्ध के प्रति गहरा रोष है। किन्तु तिस पर भी हृदय की भक्ति अक्षुण्णय है। यही द्वन्द्व लोकेश्वरी के चरित्र को जीवन्त बनाता है।

उधर राजकुमारियों का कौलीन्याभिमान भी नाटकोचित है। किन्तु कवि ने बड़े कौशल के साथ उत्तेजनापूर्ण सस्ते दृश्यों को नाटक में नहीं घुसने दिया है। महाराज बिम्बिसार की हत्या, अजातशत्रु का पुनः बौद्धधर्म-ग्रहण, जिन्हें नाटक को मसालेदार बनाने में कोई अन्य नाटककार काम में लाता, वे सब यहाँ न मिलेंगे—उन की एक क्षीण प्रतिध्वनि मात्र नाटक के बीच सुनाई देती है।

राजमहल की नटो श्रीमती में, जिसे आश्रय करके नाटक का नाम दिया गया है, हम धर्म की सूक्ष्म भावना का चरम विकास पाते हैं। सारे नाटक में आरम्भ से अन्त तक हम उसे एक ऊँचे भाव धरातल पर स्थित देखते हैं। वह हृदय की साधना का पवित्र धरातल है। इसी गुण के कारण नटी अपने नृत्य को पूजा के एक दिव्य साधन के रूप में बदल देतो है और अन्त में अपने उज्ज्वल आत्मोत्सर्ग के द्वारा मृत्यु को भी अमृत-जीवन का सन्देह-वाहक बना देती है।

ग्राम-बालिका मालती नाटक को आलोकित करने वाली प्रेम के स्निग्ध प्रकाश की दीप-शिखा है। उस के चरित्र में मानवीय प्रेम अपने दिव्यतम रूप में प्रकट हुआ है। यहाँ प्रेम देह की कमजोरी नहीं बल्कि एक निर्मल लोकोत्तर प्रेम का मार्ग-दर्शक है।

यह तो हुआ नाटक और उस के प्रधान चरित्रों का थोड़ा-सा परिचय। नाटक में आने वाले गीतों के सम्बन्ध में भी कुछ कहना आवश्यक है। गीतों को उन के मूल बंगला रूप में ही रहने दिया गया है। इस का मुख्य कारण यह है कि सुर, लय आदि की दृष्टि से रवीन्द्र-गीतों का अपना एक विशेषत्व है। गीतों को रूपान्तरित करने में उस की रक्षा करना (कम से कम वर्त्तमान अनुवादक के लिए तो) कठिन था। गाने की सुविधा के लिए परिशिष्ट में इन गीतों की स्वर-लिपि देने का एक बार बिचार किया गया था, किन्तु इस से साधारण पाठक के लिए पुस्तक का मूल्य बहुत बढ़ जाता। अतः जिन्हें संगीत की दृष्टि से गानों में रुचि हो वे 'स्वर-वितान'* भाग—२, ३ देखें। दूसरे, इन गीतों को मौलिक रूप में रहने देने से साहित्यिक दृष्टि से भी कुछ अधिक अन्तर नहीं पड़ता। क्यों कि आधुनिक हिन्दी-काव्य के और रवीन्द्र-काव्य के शब्द-विन्यास में कोई विशेष भेद नहीं। यों

* पताः—विश्वभारती-ग्रन्थालय, २१०/ कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता।

फुट नोट में छाया भी दे दी गई है। गानों के उच्चारण की सुविधा के लिए नीचे कुछ प्रधान नियम दिये जा रहे हैं :—

(१) बंगला में अकार का उच्चारण हिन्दी अकार के समान नहीं होता, बल्कि प्राय: 'अ' और 'ओ' के बीच में होता है, जैसे—अंग्रेजी 'No' में 'o'।

(२) बंगला में क्षकार का उच्चारण पद के आदि में हमेशा खकार होता है, जैसे—क्षण=खण। पर अन्यत्र इस का उच्चारण 'क्ख' होगा, जैसे—लक्षण=लक्खण।

(३) मकार के साथ जिस वर्ण का योग हो वह वर्ण सानुनासिक द्वित्व होकर मकार का लोप कर देगा, जैसे—पद्म=पद्दँ। किन्तु पद के आदि में हो तो द्वित्व नहीं होता, जैसे—स्मृति=सृँति।

(४) वकार और बकार बकार हो पढ़ा जाता है।

(५) यकार का उच्चारण पद के आदि में जकार हो जाता है, जैसे—योग=जोग। किन्तु पद के मध्य में तथा अन्त में यकार ही होगा, जैसे—समय=समय। पर यकार में रेफ हो तो जकार होगा, जैसे—धैर्य्य=धैर्ज्ज, सूर्य्य=सूर्ज्ज।

(६) मागधी प्राकृत की परम्परा के अनुसार बंगला में तीनों ही सकारों का उच्चारण तालव्य 'श' की तरह होता है।

(७) यदि किसी वर्ण का यकार अथवा वकार के साथ योग हो तो वह द्वित्व हो कर यकार-वकार का लोप कर देगा, जैसा—नित्य=नित्त, वाद्य=बाद्द। किन्तु पद के आदि

में केवल वकार का लोप होगा, जैसे—ज्वाला=जाला, द्वार=दार ।

(८) पद के आदि में आये हुए इकार, उकार का उच्चारण प्रायः ह्रस्व होगा, जैसे—पूजा=पुजा, ईश्वर=इश्वर ।

(९) पद के अंत्य वर्ण का उच्चारण प्रायः हलन्त होगा, जैसा—संसार=संसार्, तोमार=तोमार् ।

(१०) एकार का उच्चारण एकार और ऐकार के बीच का होता है ।

अनुवाद के संशोधन में गुरुकल्प भाई श्री हजारी प्रसाद जी द्विवेदी से बड़ी सहायता मिली है। धन्यवाद की रस्म अदा करना चापल्य मात्र होगा। अनुवाद पाठकों को रुचिकर हुआ तो अनुवादक के लिए सन्तोष की बात होगी ।

१८ अगस्त, १९३९

हिन्दी-भवन,

शान्तिनिकेतन ।

—भगवती प्रसाद चन्दोला

लोकेश्वरी	...	राजमहिषी (महाराज बिम्बिसार की पत्नी)
मल्लिका	...	महारानी लोकेश्वरी की सहचरी
वासवी	...	राजकुमारियाँ
नन्दा	...	राजकुमारियाँ
रत्नावली	...	राजकुमारियाँ
अजिता	...	राजकुमारियाँ
भद्रा	...	राजकुमारियाँ
उत्पलपर्णा	...	बौद्ध भिक्षुणी
श्रीमती	...	बौद्ध-धर्मरता नटी
मालती	...	बौद्ध धर्मानुरागिणी ग्रामबाला (श्रीमती की सहचरी)

दासियाँ और रक्षिणियाँ

सूचना

भिक्षु उपालि का प्रवेश

गान

पूर्वगगन भागे

दीप्त हइल सुप्रभात

तरुणारुण रागे ।

शुभ्र शुभ मुहूर्त आजि

सार्थक कर' रे,

अमृते भर' रे

अमित पुण्यभागो के

जागे, के जागे ॥❀

कोई है ?

भिक्षा चाहिए, भगवान् बुद्ध के नाम पर भिक्षा ।

❀ पूर्व-गगन-प्रान्त में सुप्रभात दीप्त हुआ है, तरुण अरुण की लालिमा से रंजित होकर । अरे, आज के शुभ्र शुभ मुहूर्त्त को सार्थक बनाओ, (और उसे) अमृत से भर दो । आज कौन ऐसा अमित पुण्यभागी है जो इस पृथ्वी पर जाग रहा है !

नटी का प्रवेश और प्रणाम

शुभम्भवतु कल्याणम् । वत्से, तुम कौन हो ?

नटी

मैं इस राजमहल की नटी हूं ।

उपालि

इस पुरी में क्या आज अकेली तुम्हीं जाग रही हो ?

नटी

राजकुमारियाँ सभी अब तक पड़ी सो रही हैं ।

उपालि

भगवान् बुद्ध के नाम पर भिक्षा चाहिए ।

नटी

प्रभु आज्ञा दें तो राजकुमारियों को बुला लाऊं ।

उपालि

आज तुम्हीं से भिक्षा लेने आया हूं ।

नटी

मैं तो अभागिन हूं । प्रभु के भिक्षा-पात्र के आगे मेरा दान कुंठित हो जायेगा । क्या दूं, अनुमति दें ।

उपालि

तुम्हारा जो भी श्रेष्ठ दान हो ।

नटी

मुझ में श्रेष्ठ क्या है, सो तो जानती नहीं ।

उपालि

ना, भगवान् ने तुम पर दया की है, वे जानते हैं।

नटी

प्रभो, तो वे स्वयं उठा लें, जो कुछ भी मेरा हो।

उपालि

वही लेंगे, तुम्हारी पूजा के फूल ; ऋतुराज वसन्त जिस प्रकार पुष्पवन के आत्मदान को अपने आप ही जागरित कर लेते हैं। तुम्हारे लिए वही शुभ बेला आई है, मैं यह तुम्हें बता गया ; तुम भाग्यवती हो।

नटी

मैं राह देखती रहूंगी। (प्रस्थान)

राजकुमारियों का प्रवेश

प्रभो, भिक्षा लेते जाँय। लौट न जाँय, लौट न जाँय। यह क्या हुआ? चले गये?

रत्नावली

तुम्हें भय क्या है, वासवी? भिक्षा लेने वाले लोगों का कोई अभाव नहीं—कमी है भिक्षा देने वालों की।

नन्दा

नहीं रत्ना, भिक्षा लेने वाले लोगों को ही साधना करके ढूंढ़ निकालना पड़ता है। आज का दिन तो व्यर्थ हुआ। (प्रस्थान)

नटी की पूजा

प्रथम अंक

मगध प्रासाद; कुंजबन

महारानी लोकेश्वरी, भिक्षुणी उत्पलपर्णा।

लोकेश्वरी

महाराज बिम्बिसार ने आज मुझे याद किया है?

भिक्षुणी

हाँ।

लोकेश्वरी

आज उनके अशोक-चैत्य में पूजा का आयोजन है—जान पड़ता है इसी लिए?

भिक्षुणी

आज वसन्त पूर्णिमा है।

लोकेश्वरी

पूजा? किस की पूजा?

भिक्षुणी

आज भगवान् बुद्ध का जन्मोत्सव है—उन्हीं के सम्मान में।

लोकेश्वरी

आर्यपुत्र से जाकर कहना कि मैं ने अपनी सारी पूजा पूरी तरह से चुका दी है। कोई तो फूल चढ़ाता है और दीप चढ़ाता है—मैं ने अपना संसार ही सूना करके दे डाला।

भिक्षुणी

क्या कहती हो महारानी ?

लोकेश्वरी

मेरा इकलौता बेटा, चित्र—मेरा राजकुमार,—उस को भिक्षु बना कर भगा ले गया। फिर भी कहता है पूजा दो ! लता का मूल काट गया और फिर चाहे फूल की मंजरी !

भिक्षुणी

जिस को दिया है उसे तुम ने खोया नहीं। जिस को गोद में पाया था आज उसी को विश्व में तुम ने पाया है !

लोकेश्वरी

नारी, तुम्हारे पुत्र भी है ?

भिक्षुणी

ना।

लोकेश्वरी

कभी था भी ?

भिक्षुणी

ना, मैं छोटी उमर से ही विधवा हूं।

लोकेश्वरी

तो फिर चुप रह। जो बात जानती नहीं उसे बोल भी मत।

भिक्षुणी

महारानी, सत्यधर्म को तुम्हीं तो राजभवन में सब से पहले आवाहन कर के लाई थीं? तब फिर आज क्यों—

लोकेश्वरी

ओहो—देखती हूं याद तो है! मैंने समझा था कि वह सब बात तुम्हारे गुरु भूल गये होंगे। भिक्षु धर्मरुचि को बुलवा कर प्रतिदिन कल्याण पंचविंशतिका का पाठ करवा तब जल ग्रहण करती, एक सौ भिक्षुओं को अन्न देती तब टूटता मेरा उपवास, प्रति वर्ष वर्षा के अन्त में सारे संघ को त्रिचीवर वस्त्र देना था मेरा व्रत। बुद्ध के धर्म-वैरी देवदत्त के उपदेश से जिस दिन यहाँ सभी का मन डावाँडोल हो रहा था, अकेले मैंने ही अविचल निष्ठा से भगवान् तथागत को इसी उद्यान के अशोक तले बिठला कर सब को धर्मतत्त्व सुनवाया। निठुर, अकृतज्ञ, अन्त में मुझी को यह पुरस्कार! जो रानियाँ विद्वेष से जली थीं, मेरे भोजन में विष मिलाया जिन्होंने, उनका तो कुछ भी नहीं बिगड़ा, उन के बेटे तो राज भोग रहे हैं।

भिक्षुणी

दुनिया के भाव से धर्म का मोल नहीं आँका जाता

महारानी। सोने की कीमत और प्रकाश की कीमत क्या एक है?

लोकेश्वरी

जिस दिन कुमार अजातशत्रु ने देवदत्त के सामने आत्म-समर्पण किया था, मैं निर्बोध उस दिन हँसी थी। सोचती थी कि फूटी डोंगी में बैठ कर ये लोग समुद्र पार होना चाहते हैं।

देवदत्त के जोर पर, पिता के रहते हुए भी, राजा बन बैठूंगा, यह थी उनकी अभिलाषा। मैंने निर्भय और सगर्व कहा था, देवदत्त से भी जिस गुरु के पुण्य का जोर अधिक है, उन्हीं की कृपा से अमंगल टल जायेगा। इतना दृढ़ मेरा विश्वास था! भगवान् बुद्ध को—शाक्यसिंह को—लाकर मैंने उन के द्वारा आर्यपुत्र को आशीर्वाद दिलाया। तब भी जीत हुई किसको?

भिक्षुणी

तुम्हारी ही। उस जीत को भीतर से बाहर न लौटा देना।

लोकेश्वरी

मेरी जीत!

भिक्षुणी

और नहीं तो क्या। पुत्र का राज्य-लोभ देखकर महाराज बिम्बिसार स्वेच्छा से जिस दिन सिंहासन छोड़ सके थे, उस दिन उन्होंने जो राज्य जय किया था—

लोकेश्वरी

वह राज्य केवल कहने भर की बात है, क्षत्रिय राजा के लिये वह अशोभन है। और जरा मेरी ओर तो देखो! मैं आज पति के होते हुए भी विधवा, पुत्र के होते हुए भी निपूती, राजमहल के बीच होते हुए भी निर्वासिता हूं। यह तो केवल कहने की ही बात नहीं! जिन्होंने तुम्हारा धर्म कभी भी नहीं माना, वे ही आज मुझे देख कर अवज्ञा से हँस कर चले जाते हैं। तुम जिन्हें कहती हो श्रीवज्रसत्त्व, आज कहाँ हैं वे—पड़े न उन का वज्र इन के माथे पर।

भिक्षुणी

महारानी, इस में सत्य कहाँ है! यह तो है क्षणिक स्वप्न—जाने भी दो ना उन्हें हँसते हुए।

लोकेश्वरी

हो न स्वप्न! पर मैं ऐसे स्वप्न को नहीं चाहती। मैं चाहती हूं और तरह का स्वप्न, जिसे कहते हैं धन, जिसे कहते हैं पुत्र, जिसे कहते हैं सम्मान। उसी स्वप्न से फूले-फूले जो इठलाते हुए इस ओर सिर उठाये चले जाते हैं, कहो न उन्हीं से जाकर। दें न वही पूजा!

भिक्षुणी

तो फिर जाऊं।

लोकेश्वरी

जाओ, किन्तु मेरी जैसी अबोध नहीं हैं वे। उनका कुछ

भी नहीं जायगा, सभी कुछ रहेगा,—उन्होंने तो बुद्ध को माना नहीं, शाक्यसिंह की दया तो उन के ऊपर हुई नहीं, तभी तो बच गईं—बच गईं वे। इस तरह चुपचाप क्यों खड़ी हो? धीरज का स्वाँग करना सीख गई हो?

भिक्षुणी

कैसे कहूं? इस समय भीतर ही भीतर धीरज टूटा जा रहा है।

लोकेश्वरी

धीरज टूट रहा है, तब भी मन ही मन मुझे केवल क्षमा कर रही हो। तुम लोगों की यह ढिठाई सही नहीं जाती! जाओ!

(भिक्षुणी का प्रस्थानोद्यम)

लोकेश्वरी

सुनो, सुनो, भिक्षुणी। चित्र ने अपना जाने क्या एक नया नाम रख लिया है। जानती हो तुम?

भिक्षुणी

जानती हूं, कुशलशील।

लोकेश्वरी

जिस नाम से उसकी मां ने उसे पुकारा था वह आज अपवित्र हो गया! तभी तो उसे फेंक कर चल दिया वह!

भिक्षुणी

महारानी यदि चाहो तो उस को एक दिन तुम्हारे पास ला सकती हूं।

लोकेश्वरी

लज्जा के मारे ऐसी चाह मैं करूंगी कैसे! और आज तुम लाओगी उसे मेरे पास, जो प्रथम उसको पृथ्वी पर लाई थी!

भिक्षुणी

तो आज्ञा दो मैं जाऊं।

लोकेश्वरी

जरा ठहरो। तुम से उसको भेंट होती है?

भिक्षुणी

होती है।

लोकेश्वरी

अच्छा, एक बार न हो उसे—यदि वह—ना, रहने दो।

भिक्षुणी

मैं उन से कहूंगी। शायद उन के साथ तुम्हारी भेंट हो जायेगी। (प्रस्थान)

लोकेश्वरी

शायद, शायद, शायद! नाड़ी का रक्त दे कर उसका पालन किया था, उस में "शायद" कहीं भी नहीं घुला हुआ था। इतने दिन के मातृऋण का अधिकार आज इस नन्हें-से "शायद" पर आ रुका! इसी को कहते हैं धर्म! मल्लिका!

(मल्लिका का प्रवेश)

मल्लिका

देवी।

लोकेश्वरी

कुमार अजातशत्रु का कोई संवाद मिला ?

मल्लिका

मिला है। देवदत्त को लिवा लाने गये हैं। इस राज्य में त्रिरत्न पूजा का अब कुछ भी बाकी न रहेगा।

लोकेश्वरी

कायर! राजत्व करते राजा का साहस नहीं! बौद्ध धर्म की शक्ति कितनी है, वह सब मेरे ऊपर तय हो चुका है। तब भी उस नाचीज देवदत्त की आड़ में खड़े हुए बिना इस मिथ्या की उपेक्षा करने का साहस न हुआ!

मल्लिका

महारानी, जिन के पास बहुत होता है उन्हीं के बहुत आशंकाएँ होती हैं। वे राज्येश्वर हैं, तभी तो भय के मारे सभी शक्तियों के साथ सन्धि की यह चेष्टा है। बुद्ध-शिष्यों का समादर जैसे ही अधिक हो जाता है वैसे ही वे देवदत्त के शिष्यों को बुला कर उनका और भी अधिक समादर करते हैं। भाग्य को दोनों ओर से ही निरापद कर देना चाहते हैं।

लोकेश्वरी

मेरा भाग्य तो एकदम ही निरापद है। मेरा कुछ भी नहीं, तभी तो मिथ्या को सहायक बनाने की दुर्बल बुद्धि जाती रही।

मल्लिका

देवो, भिक्षुणी उत्पलपर्णा की ही जैसी तुम्हारी यह बात

है। वे कहती हैं, लोकेश्वरी महारानी का भाग्य अच्छा है, मिथ्या जिन सब खूंटियों से मनुष्य को बाँधे रहती है, भगवान् महाबोधि की कृपा से उन की वह सभी खूंटियाँ टूट गई हैं।

लोकेश्वरी

देख, वे सब बनावटी बातें सुन कर मुझे क्रोध आता है। अपने अति निर्मल कोरे सत्य को तुम लेकर रहो, मेरी ये मिट्टी से सनी हुई खूंटियाँ मुझे लौटा दो। तब फिर से एक बार अशोक-चैत्य में दीप जलाऊंगी, एक सौ श्रमणों को अन्न दूंगी, उन के जितने मंत्र हैं सब का एक सिरे से जप कर जाऊंगी। और यदि वह न हो तो आवें देवदत्त, फिर चाहे वे सच्चे ही हों अथवा झूठे! जाऊं, एक बार प्रासाद शिखर पर जा कर देखूं, वे कितनी दूर हैं!

(दोनों का प्रस्थान)

वीणा हाथ में लिए हुए श्रीमती का प्रवेश—
लतावितान तले आसन बिछाती है—दिगन्त पर
दृष्टि डालती है—

श्रीमती

समय हो गया, तुम लोग आओ।

(अपने मन ही मन गाती है)

निशीथे की कये गेल मने,
की जानि की जानि।

से कि घूमे से कि जागरणे,
की जानि की जानि ।※

(मालती का प्रवेश)

मालती

तुम श्रीमती हो ?

श्रीमती

हाँ री, क्यों, बोल तो ।

मालती

तुम से गान सीखने के लिए प्रतीहारी ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है ।

श्रीमती

महल में तो तुम्हें पहले कभी देखा नहीं ।

मालती

गाँव से अभी नई-नई आई हूं, नाम मेरा मालती है ।

श्रीमती

क्यों आई बेटी ? वहाँ क्या दिन नहीं कट रहे थे ? अब तक थी पूजा की कली, देवता प्रसन्न थे ; होगी भोग की माला, उपदेवता हँसेंगे । व्यर्थ होगा तेरा वसन्त । गान सीखने आई है ? इतनी ही तेरी आशा है ?

※ निशीथ में (वह) मेरे मन में, न जाने, न जाने, क्या कह गया । न जाने, वह नींद में (कह गया) या जागते में ।

मालती

सच कहूं ? उस से भी कहीं अधिक बड़ी आशा है मेरी। कहते संकोच होता है।

श्रीमती

ओ, अब समझी। राजरानी होने की दुराशा। पूर्वजन्म में अगर अनेक पाप किये हों तो हो भी सकती हो। बन का पंछी सोने का पिंजड़ा देख कर लुभा जाता है, तभी जब कि उसके डैनों पर सवार हो जाती है दुर्बुद्धि। जा, जा, लौट जा, अभी समय है।

मालती

तुम क्या कह रही हो, दीदी, अच्छी तरह समझ नहीं पाती हूं।

श्रीमती

मैं कह रही हूं— (गान)

बाँधन केन भूषण वेशे तोरे भोलाय
हाय अभागी !
मरण केन मोहन हेसे तोरे दोलाय,
हाय अभागी ! ❀

मालती

तुम मुझे कुछ भी नहीं समझीं। तो अब साफ ही

❀ हाय अभागिनी, बन्धन क्यों भूषण बन कर तुझे भुला रहा है, (और) मरण क्यों मोहिनी हँसी हँस कर तुझे झुला रहा है !

बताती हूं। सुना है कि एक दिन भगवान् बुद्ध इस विश्राम-बन के अशोक तले आकर बैठे थे। कहते हैं कि महाराज बिम्बिसार ने वहीं पर एक वेदी बनवा दी है।

श्रीमती

हाँ, ठीक है।

मालती

राजभवन की स्त्रियाँ वहाँ पर सन्ध्या समय पूजन करती हैं।—मेरा यदि पूजा का अधिकार न हो तो मैं वहाँ की धूल झाड़ दिया करूंगी, इसी आशा को लेकर यहाँ गायिकाओं के दल में भर्ती हुई हूं।

श्रीमती

आओ बहन, आओ, अच्छा ही हुआ। राजकुमारियों के हाथ से पूजा का दीप धुँवा देता है अधिक, उजाला देता है कम। तुम्हारे इन दो निर्मल हाथों की ही प्रतीक्षा थी। किन्तु यह बात तुम्हें सुझाई किसने?

मालती

कैसे कहूं, दीदी। आज हवा के हरेक झोंके में आग की तरह जाने कौन-सा एक मंत्र लग गया है। उस दिन मेरा भाई चला गया। उस की आयु है केवल अठारह की। हाथ जोड़ कर मैंने पूछा, "कहाँ जा रहा है भैया," वह बोला "खोजने को।"

श्रीमती

नदी की समस्त लहरों को समुद्र ने आज एक आवाज से

पुकारा है। पूर्ण चन्द्र उग आया।—यह क्या! तुम्हारे हाथ में तो अंगूठी देख रही हूं। जाने कैसा लग रहा है! स्वर्ग की मंदार कलिका कहीं मिट्टी के मोल तो नहीं बिक गई?

मालती

तो फिर खुल कर ही कहूं—तुम सब बात समझ जाओगी।

श्रीमती

कितना ही रो-रो कर समझने की शक्ति आई है।

मालती

वे धनी थे, हम लोग दरिद्र। दूर से चुपके-चुपके उन्हें देखा करती। एक दिन आकर बोले, मालती मुझे बड़ी अच्छी लगती है। पिता ने कहा, यह मालती का सौभाग्य है। सब आयोजन जिस दिन पूरा हुआ, वे आये द्वार पर। वर के वेश में नहीं, भिक्षु के वेश में। काषाय वस्त्र और हाथ में दंड। बोले, यदि मिलन हुआ तो मुक्ति के पथ पर, यहाँ नहीं।—दीदी, तुम कुछ बुरा न मानना—अभी भी आँखों में आँसू आरहे हैं, मन छोटा है न।

श्रीमती

आँखों का जल बह जाने दे न। मुक्ति-पथ की धूल उस से शान्त हो जायगी।

मालती

प्रणाम करके उनसे बोली, "मेरा बन्धन तो अभी टूटा नहीं। अंगूठी पहनाने का जो वचन दिया था, उसे पूरा करते

जाओ।" यही वह अंगूठी है। भगवान् की आरती में यह जिस दिन मेरे हाथ से उनके पाँवों में खिसक कर गिर पड़ेगी, उसी दिन मुक्ति के पथ पर भेंट होगी।

श्रीमती

कितनी ही स्त्रियों ने घर बनाया था, आज उन्होंने घर को तोड़ डाला है। कितनी ही स्त्रियाँ चीवर पहन कर पथ पर निकल पड़ी हैं, कौन जाने पथ के खिंचाव से अथवा पथिक के? कई बार हाथ जोड़ कर मन ही मन प्रार्थना करती हूं—कहती हूं "महापुरुष, उदासीन न बने रहो। आज घर-घर नारी की आँखों के पानी में तुम ने ही बाढ़ फैला दी है, तुम्हीं उन्हें शान्ति दो।" राजमहल की स्त्रियाँ वह आ रही हैं।

(वासवी, नन्दा, रत्नावली, अजिता, मल्लिका और भद्रा का प्रवेश)

वासवी

यह बालिका कौन है, देखूं तो! केशों की कबरी बाँधी है, अलकों में दे रखा है जवा। नन्दा, जरा देखती जाओ, आक के फूलों की माला बना कर वेणी को कितना ऊंचा कर के लपेटा है। गले में गुंज फलों का हार दीखता है? श्रीमती, यह कहाँ से चली आई?

श्रीमती

गाँव से। इस का नाम मालती है।

रत्नावली

पाया है तुमने एक शिकार! उस को शायद शिष्या बना-ओगी? हम लोगों का उद्धार तो कर न सकी, अब गाँव की लड़की को पकड़ कर मुक्ति का व्यवसाय चलाओगी!

श्रीमती

ग्राम बालिका को भला मुक्ति की क्या चिन्ता! वहाँ स्वर्ग के हाथों का काज ढँक नहीं गया है—न धूल से, न मणि-माणिक्य से—स्वर्ग इसी लिए उन्हें आप ही आप पहचान लेता है।

रत्नावली

स्वर्ग न जाऊं तो भी अच्छा, किन्तु तुम्हारे उपदेश के जोर पर नहीं जाना चाहती। गणेश के चूहे की कृपा से सिद्धि-लाभ करने का मुझे उत्साह नहीं, वरंच यमराज के भैंसे को मानने को मैं राजी हूं।

नन्दा

रत्ना, तुम्हारा वाहन तो तैयार ही है,—लक्ष्मी का उल्लू। देख तो अजिता, श्रीमती को लेकर ऐसा मखौल क्यों! वह तो उपदेश देने आती नहीं।

वासवी

उसका चुप रहना ही तो बहुत सारा उपदेश हो जाता है। यह देखो न, गुप-चुप हँस रही है। यह क्या उपदेश नहीं हुआ?

रत्नावली

महान् उपदेश! और नहीं तो क्या, मधुर के द्वारा कटु को जय करेगी, हास्य के द्वारा भाष्य को।

वासवी

थोड़ा-सा झगड़ा क्यों नहीं करती, श्रीमती। इतनी मधुरता भला कहीं सही जा सकती है? मनुष्य को लज्जित करने से तो नाराज कर देना कहीं अधिक अच्छा।

श्रीमती

भीतर से यदि वैसी भली होती तो बाहर से बुरे का भान करना कोई वैसा खटकता भी नहीं। कलंक का भान करना चाँद को ही शोभा देता है। किन्तु अमावस्या! वह यदि मेघ का मुखोटन पहिने तो?

अजिता

वह देखो, ग्राम-बालिका अवाक् हो कर सोच रही है, राज-महल की स्त्रियों की रसना में रस नहीं, केवल धार ही है। क्या है तुम्हारा नाम, जरा भूल गई।

मालती

मालती।

अजिता

क्या सोचती थी, बोलो ना।

मालती

दीदी को प्यार करती हूं, इस लिए दुख हो रहा था।

अजिता

हम जिसे प्यार करती हैं उसे ही खिझाने का स्वांग रचती हैं। राजमहल के अलङ्कार शास्त्र का यही नियम है। याद रखना इसे।

भद्रा

मालती, तू जाने क्या एक बात कहने जा रही थी। कह क्यों नहीं डालती। हम लोगों के बारे में तुम क्या सोचती हो, यह जानने का बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है।

मालती

मैं कहना चाहती थी, "हाँ जी, तुम लोग अपनी ही बात सुनना इतना पसन्द करती हो, गान सुनने का समय बीता जा रहा है।"

सभी का अट्टहास

वासवी

हाँ जी, हाँ जी! राजमहल के व्याकरणचुञ्चु को पुकारो, उन की शिक्षा अभी सम्बोधन कारक की अन्तिम सीमा तक नहीं पहुँची है।

रत्नावली

हाँ जी वासवी, हाँ जी राजकुल-मुकुट-मणि-मालिका!

वासवी

हाँ जी रत्नावली, हाँ जी भुवन-मोहन-लावण्य-कौमुदी—

वाह, व्याकरण की यह क्या नूतन उपलब्धि है! सम्बोधन में हाँ जी!

मालती

दीदी, ये क्या मुझ पर नाराज हो गई हैं?

नन्दा

तुम्हें कोई भय नहीं मालती। दिग्बालिकाएँ जब हर-सिंगार के बन में ओलों की वृष्टि करती हैं तो वे ऐसा नाराज हो कर नहीं करतीं, उन के प्यार करने का ढंग ही यह है।

अजिता

वह देखो, श्रीमती मन ही मन गाती जा रही है। हमारी बातें उस के कानों में पहुंचती ही नहीं। श्रीमती, गला खोल कर गाओ ना, हम लोग भी साथ देंगी।

श्रीमती का गान

निशीथे की कये गेल मने,
की जानि, की जानि।
से कि घूमे से कि जागरणे
की जानि, की जानि।
नाना काजे नाना मते
फिरि घरे, फिरि पथे
से कथा कि अगोचरे बाजे क्षणे क्षणे
की जानि, की जानि।

से कथा कि अकारणे व्यथिछे हृदय,
एकि भय, एकि जय।
से कथा कि काने काने बारे बारे कय
"आर नय, आर नय।"
से कथा कि नाना सुरे
बले मोरे, "चलो दूरे,"
से कि बाजे बुके मम, बाजे कि गगने,
की जानि, की जानि।※

वासवी

मालती, तुम्हारी आँखों में तो जल भर आया। इस गाने में क्या समझी, बोलो तो।

मालती

श्रीमती एक पुकार सुन रही है।

※ निशीथ में (मेरे) मन में (वह) न मालूम क्या कह गया। न मालूम वह नींद में या जागते में (कह गया)। नाना काम-काज से और नाना तरह से (मैं) घर में और रास्ते में फिरती हूँ। वह बात क्षण क्षण, न मालूम, न मालूम, अगोचर में बजती है। वह बात क्या अकारण ही हृदय को व्यथित करती है, यह क्या भय है या जय। वह बात बार बार कानों में क्या कहती है—"और नहीं, और नहीं।" वह नाना स्वरों में मुझ से कहती है—"चलो दूर।" वह क्या मेरे हृदय में बजती, या आकाश में बज रही है, न मालूम, न मालूम।

वासवी

किस की पुकार ?

मालती

जिस की पुकार पर मेरा भाई चला गया—जिस की पुकार पर मेरा—

वासवी

कौन, तुम्हारा कौन ?

श्रीमती

मालती, मेरी बहन, चुप रह, और न बोलना। आँखें पोंछ डाल, यह रोने की जगह नहीं।

वासवी

श्रीमती, उसे तुम ने रोका क्यों ? तुम क्या मन में यह समझती हो कि हम केवल हँसना ही जानती हैं ?

भद्रा

हम क्या बिलकुल ही नहीं जानतीं कि किस जगह पर हँसी नहीं खपती ?

मालती

राजकुमारी, आज तो वायु के झोंके-झोंके में बात चल रही है, तुम लोगों ने क्या सुना नहीं ?

नन्दा

प्रभात के आलोक में कमल की पँखुरी खुल जाती है, किन्तु राजप्रासाद की दीवाल तो खुलती नहीं।

लोकेश्वरी का प्रवेश, सभी का प्रणाम

लोकेश्वरी

मुझ से यह सहा नहीं जाता। वह सुनती नहीं हो, जहाँ-तहाँ रास्ते-रास्ते स्तव-ध्वनि—ॐ नमो बुद्धाय गुरवे, नमः संघाय महत्तमाय। उसे सुन कर अभी भी मेरी छाती के भीतर कँप-कँपी उठती है। (कानों पर हाथ दे कर) आज ही इसे रोक देना चाहती हूं। अभी, अभी!

मल्लिका

देवी, शांत हों!

लोकेश्वरी

क्यों कर शांत होऊं? कौन सा मंत्र शांत करेगा? वही, नमः परमशांताय, महाकारुणिकाय—यह मंत्र और नहीं सुनना चाहती, और नहीं। मेरा मंत्र है "नमो बज्र-क्रोध-डाकिन्यै नमः श्रीवज्रमहाकालाय।" अस्त्रों से, अग्नि से, रक्त से जगत् में शांति आयेगी। नहीं तो क्या मां की गोद छोड़ कर पुत्र चला जाता, सिंहासन से राज-महिमा जीर्ण पत्ते की भाँति झड़ पड़ती।—तुम कुमारियाँ यहाँ पर क्या कर रही हो?

रत्नावली

(हँस कर) अपने उद्धार की राह देख रही हैं। मलिन मन को निर्मल कर इस श्रीमती की शिष्या होने के पथ पर थोड़ा थोड़ा अग्रसर हो रही हैं।

वासवी

तुम्हारी यह अत्युक्ति अश्राव्य है।

लोकेश्वरी

इस नटी की शिष्या! आखिर यही तो होगा, अब ऐसा ही धर्म आया है। पतिता आवेगी परित्राण का उपदेश लेकर! जान पड़ता है श्रीमती आज अचानक साध्वी हो उठी है! जिस दिन भगवान् बुद्ध अशोक-बन में आये थे, राजपुरी के सभी लोग उन के दर्शनार्थ गए, दया करके इसे बुला लाने के लिए भी मैं ने आदमी भेजा था। पापिष्ठा आई ही नहीं। तो भी सुना है आज कल भिक्षु उपालि राजमहल में एकमात्र उसी के हाथ की भिक्षा लेने आता है, राजकुमारियों की उपेक्षा कर चला जाता है। अरी नासमझ लड़कियों, राजवंश की ललनाएँ हो कर तुम लोग इस धर्म की अभ्यर्थना करने चली हो, उच्च आसन को खींच कर धूल में फेंक देने वाला यह धर्म! जहाँ राजा का प्रभाव था, वहाँ अब भिक्षु का प्रभाव होगा—इसी को धर्म कहती हो तुम, आत्मघातिनियो? उपालि तुझे क्या मंत्र दे गया है उच्चारण तो कर, देखूं जरा नटी! देखूं तेरी ढिठाई! पापी रसना को लकवा न मार जायेगा?

श्रीमती

(हाथ जोड़े खड़ी हो कर) ॐ नमो बुद्धाय गुरवे, नमो धर्माय तारिणे, नमः संघाय महत्तमाय नमः!

लोकेश्वरी

ॐ नमो बुद्धाय गुरवे—रहने दे रहने दे, रुक रुक।

श्रीमती

मद्धिताय अनाथाय अनुकंपाय ये विभो—

लोकेश्वरी

(छाती पीट कर) अरी अनाथा, अनाथा!—श्रीमती एक बार बोल तो, "महाकारुणिको नाथो"—

दोनों आवृत्ति करती हैं

महाकारुणिको नाथो हिताय सब्बपाणिनं
पूरेत्वा पारमी सब्बा पत्तो सम्बोधिमुत्तमं।

लोकेश्वरी

हो गया, हो गया, बस अब रहने दे और नहीं। "नमो वज्रक्रोधडाकिन्यै!"

अनुचरी का प्रवेश

अनुचरी

महारानी, इस ओर आइये एकान्त में। (जनान्तिक में) राजकुमार चित्र जननी से मिलने आए हैं।

लोकेश्वरी

कौन कहता कि धर्म मिथ्या है! जैसे ही पुण्य मंत्र का उच्चारण हुआ वैसे अमंगल भी टला! ओ री विश्वासहीनाओ, तुम सब मेरा अनुताप देख मन ही मन हँसी थीं! "महाकारुणिको नाथो" उन की करुणा में कितनी बडी शक्ति है!

पत्थर भी गल जाता है। यह मैं तुम सभी को कहे जाती हूं, फिर पाऊंगी पुत्र को, फिर पाऊंगी सिंहासन को। जिन्हों ने भगवान् का अपमान किया है, देखूंगी कि उनका दर्प कै दिन चलता है! बुद्धं सरणं गच्छामि— (बोलते बोलते सहचरी सहित प्रस्थान)

रत्नावली

मल्लिका, हवा अब फिर किधर से बही?

मल्लिका

आजकल सारे आकाश में जो यह पागलपन की हवा फैली है, इस को गति में भला कहीं कोई स्थिरता है? सहसा किस को कौन-सी दिशा में उड़ा ले जाय, कोई कह नहीं सकता। वह कलन्दक जिस ने आज तक चालीस वर्ष जुआ खेल कर काटे, सुना है, वह हठात् उनका पूज्य हो उठा है। और फिर नन्दि-वर्धन, जिस ने यज्ञ में सर्वस्व देने का प्रण किया था, आज ब्राह्मण को देखते ही मारने दौड़ता है।

रत्नावली

तो फिर राजकुमार चित्र लौट आए!

मल्लिका

देखो न अन्त तक क्या होता है।

मालती

भगवान् दयावतार जिस दिन यहाँ पधारे थे, श्रीमती दीदी उन्हें देखने नहीं गई, यह क्या सच है?

श्रीमती

सच है। दर्शन करना हो उनका पूजन करना है। मैं मलिन, मुझ में तो नैवेद्य प्रस्तुत था ही नहीं।

मालती

हाय, हाय, तो क्या हुआ दीदी!

श्रीमती

इतने सहज में उन के पास जाने से तो जाना ही व्यर्थ हो जाता है। उन्हें देख कर ही क्या देखा जा सकता है, उन के वचन कानों सुन कर ही क्या सुना जा सकता है?

रत्नावली

अच्छा, यह तो हम पर कटाक्षपात हुआ। थोड़े से प्रश्रय की हवा से नटी के सौजन्य का आवरण उड़ जाता है।

श्रीमती

बनावटी सौजन्य के अब मेरे दिन गये। ठकुरसुहाती न कहूंगी, साफ साफ कहूंगी, तुम्हारी आँखों ने जिसे देखा है, तुम ने उसे सचमुच नहीं देखा।

रत्नावली

वासवी, भद्रा, इस नटी की ढिठाई को कैसे सह रही हो?

वासवी

बाहर से सत्य को यदि न सह सकूंगी तो भीतर से मिथ्या को सहन करना होगा। श्रीमती और एक बार गाओ तो अपने मंत्र को, हमारे मन के काँटों की नोक तो घिस जाय।

श्रीमती

ॐ नमो बुद्धाय गुरवे, नमो धर्माय तारिणे, नमः संघाय महत्तमाय नमः ।

नन्दा

हम तो भगवान् के दर्शनार्थ गई थीं, और भगवान् स्वयं ही आकर दर्शन दे गये श्रीमती को,—उसके अन्तर में ।

रत्नावली

विनय भूल गई नटी ! इस बात का प्रतिवाद न करोगी ?

श्रीमती

क्यों करूंगी राजकुमारी ? वे यदि मेरे भी अन्तर में पाँव रखें तो उस में क्या मेरा गौरव है, या उन्हीं का ?

वासवी

रहने भी दे, बातों-बात बात बढ़ जाती है । अब गान गा ।

श्रीमती का गान

तुमि कि एसेछो मोर द्वारे
खुंजिते आमार आपनारे ?
तोमारि जे डाके
कुसुम गोपने ह'ते वाहिराय नग्न शाखे शाखे,
सेइ डाके डाको आजि ता'रे ।
तोमारि से डाके बाधा भोले,
श्यामल गोपन प्राण धूलि-अवगुण्ठन खोले,

से डाके तोमारि
सहसा नवीन ऊषा आसे हाते आलोकेर झारि,
देय साड़ा घन अन्धकारे ।※

नेपथ्य में

ॐ नमो रत्नत्रयाय, बोधिसंघाय, महासंघाय, महा-कारुणिकाय ।

उत्पलपर्णा का प्रवेश

सभी

भगवति, नमस्कार ।

भिक्षुणी

भवतु सब्बमंगलं रक्खन्तु सब्बदेवता ।
सब्बबुद्धानुभावेन सदा सोत्थी भवन्तुते ॥

श्रीमती !

श्रीमती

क्या आज्ञा है ?

※ तुम क्या मेरे-अपने को खोजने के लिए मेरे द्वार पर आये हो ? तुम्हारी जिस आवाज पर कुसुमवृंद गोपन से नम्र शाखा-शाखा पर प्रकटित होते हैं, उसी आवाज से उस (मेरे-अपने) को भी पुकारो । तुम्हारी उस आवाज से वह (पुष्प) बाधाओं को भूल जाता, और उसका श्यामल गोपन प्राण धूल का अवगुण्ठन खोल देता है । तुम्हारी उस आवाज पर सहसा नवीन ऊषा आलोक की झारी लिए आती है (और) वह घने अंधकार में से निकल आता है ।

भिक्षुणी

आज वसन्त पूर्णिमा को भगवान् बोधिसत्त्व का जन्मोत्सव है। अशोक–बन में उन के आसन पर पूजा-करने का भार है श्रीमती के ऊपर।

रत्नावली

मालूम होता है कि गलत सुना। किस श्रीमती की बात कह रही है?

भिक्षुणी

यही तो, यही श्रीमती।

रत्नावली

राजमहल की यह नटी?

भिक्षुणी

हाँ यही नटी।

रत्नावली

स्थविरों से अनुज्ञा ली है आपने?

भिक्षुणी

उन्हीं का तो यह आदेश है।

रत्नावली

वे कौन हैं? नाम तो सुनूं।

भिक्षुणी

एक तो हैं उपालि।

रत्नावली

उपालि तो नाई हैं।

भिक्षुणी

सुनन्द ने भी कहा है।

रत्नावली

वे तो ग्वाले के लड़के हैं।

भिक्षुणी

सुनीत का भी यही आदेश है।

रत्नावली

वे तो सुना है जाति के पुक्कस हैं।

भिक्षुणी

राजकुमारी, ये लोग जाति के सभी एक हैं। इन की कुलीनता की बात तुम्हें मालूम नहीं।

रत्नावली

सचमुच ही मालूम नहीं। शायद यह नटी जानती है। मालूम होता है इस की जाति से कोई विशेष प्रभेद नहीं। नहीं तो इतनी ममता क्यों ?

भिक्षुणी

यह सच है। राजपिता बिम्बिसार "राजगृह" नगरी के निर्ज्जन वास से आज स्वयं आकर वृत पालन करेंगे। उन का अभिनंदन कर आऊं।

(प्रस्थान)

अजिता

कहाँ चली श्रीमती ?

श्रीमती

अशोक-बन की आसन-वेदी को धोने जाऊंगी।

मालती

दीदी, मुझे संग ले लेना।

नन्दा

मैं भी जाऊंगी।

अजिता

सोचती हूं मैं भी क्यों न चलूं।

वासवी

मैं भी देख आऊं, तुम लोगों का अनुष्ठान कैसा होता है।

रत्नावली

वाह, कैसी शोभा होगी! श्रीमती करेगी पूजा का आयोजन और तुम परिचारिकाओं का दल करेगा चामर वीजन!

वासवी

और तुम यहाँ से अभिशाप की गरम उसाँसें छोड़ोगी। उस से अशोक-बन भी नहीं जलेगा, श्रीमती की शांति भी अक्षुण्णय रहेगी। (रत्नावली और मल्लिका को छोड़ बाकी सभी का प्रस्थान)

रत्नावली

न सहा जायेगा! कभी न सहा जायेगा! यह एक दम सभी

के विरुद्ध है! मल्लिका, मैं पुरुष होकर क्यों न जनमी! इन कंगन पहनने वाले हाथों को धिक्कारने को जी चाहता है! काश, इन में तलवार होती! तुम भी तो मल्लिका बराबर चुपचाप बैठी थीं, एक भी तो बात न बोलीं तुम! क्या इस नटी के परिचारिका-पद की तुम भी कामना करती हो?

मल्लिका

ऐसा करने पर भी न पाऊंगी। नटी मुझे खूब पहचानती है।

रत्नावली

किस तरह चुपचाप सह लेती हो, मैं कुछ समझ नहीं पाती। बेबसी का धैर्य और लोगों का अस्त्र होता है, राजकन्याओं का नहीं।

मल्लिका

मैं जानती हूं कि प्रतिकार निकट ही है, इस लिए शक्ति का अपव्यय नहीं करती।

रत्नावली

ठीक जानती हो?

मल्लिका

ठीक।

रत्नावली

यदि गुप्त बात हो तो मत कहो। केवल यही थोड़ा-सा

जानना चाहती हूं कि नटी आज संध्या समय पूजा करेगी और राजकन्याएँ हाथ जोड़े खड़ी रहेंगी ?

मल्लिका

नहीं, किसी तरह भी नहीं ! मैं वचन देती हूं।

रत्नावली

राजगृहलक्ष्मी तुम्हारी वाणी सार्थक करें !

द्वितीय अंक

राजोद्यान—लोकेश्वरी और मल्लिका

मल्लिका

पुत्र के साथ भेंट तो हुई महारानी! तो फिर अब भी क्यों—

लोकेश्वरी

पुत्र के साथ? पुत्र कहाँ? यह तो मृत्यु से भी बढ़ कर है! पहले समझ न सकी थी!

मल्लिका

इस तरह की बातें क्यों कहती हैं?

लोकेश्वरी

पुत्र जब अपुत्र हो कर मां के पास आता है तो इस जैसा और कोई भी दुःख नहीं। किस ढंग से उसने मेरी ओर देखा? उस की मां एकदम लुप्त हो गई है—कहीं भी उस का कोई चिह्न बाकी नहीं रहा! अपने इतने बड़े सर्वनाश की तो मैं कभी कल्पना भी न कर पाती।

मल्लिका

रक्त-मांस के जन्म को सम्पूर्ण रूप से एक ओर फेंक कर ये लोग निर्मल जन्म पा जाते हैं कि नहीं।

लोकेश्वरी

हाय रे रक्त-मांस! हाय रे असह्य क्षुधा, असह्य वेदना!

रक्त-मांस की तपस्या इन की इस शून्य की तपस्या से क्या कुछ भी कम है!

मल्लिका

किन्तु जो भी कहो देवी, उन को देखा मैंने, कैसा रूप है! आलोक से धुली हुई जैसी देवमूर्ति हो।

लोकेश्वरी

उसी रूप को लेकर वह अपनी मां को लज्जित कर गया। जिस मां का प्राण मेरी नाड़ियों में है, जिस मां का स्नेह मेरे हृदय में है, उस को वह रूप धिक्कार दे गया! जो जन्म मैं ने दिया है उस को, उस जन्म के साथ उस के इस नूतन जन्म का केवल विच्छेद मात्र हो, सो बात नहीं, विरोध है विरोध! देख मल्लिका, आज खूब अच्छी तरह समझ गई हूं यह धर्म पुरुष की कृति है। इस धर्म में मां बेटे के लिए अनावश्यक है; स्त्री को पति का प्रयोजन नहीं। जो लोग न पुत्र हैं, न पति, न भाई; उन्हीं तरह-तरह के भगोड़ों को भीख देने के लिए समस्त प्राणों को सुखा-सुखा कर हम लोग शून्य घरों में पड़ी रहें! मल्लिका, इन पुरुषों के धर्म ने हमें मारा है, हम भी इसे मारेंगी!

मल्लिका

किन्तु देवी, देखती नहीं, स्त्रियाँ ही तो दल बाँध कर चली हैं बुद्ध को पूजा देने!

लोकेश्वरी

नासमझ हैं वे सब, भक्ति करने की उन की क्षुधा का कहीं

अन्त नहीं। जो उन्हें सब से अधिक मारे उस को ही वे सब से अधिक अर्पित करती हैं। इस मोह को मैं ने प्रश्रय नहीं दिया।

मल्लिका

यों ही कहती हो, महारानी। अच्छी तरह जानती हूं, तुम्हारा वही पुत्र आज तुम्हारे सेवा-कक्ष के द्वार से बाहर आकर तुम्हारे पूजा-कक्ष के द्वार से भीतर प्रविष्ट हुआ है। तुम्हारा मानव-पुत्र गोद से उतर कर आज देवता-पुत्र हो कर तुम्हारे हृदय की पूजा-वेदी पर जा बैठा है।

लोकेश्वरी

चुप, चुप! अब न बोल! मैं ने हाथ जोड़ कर उस से अनुरोध किया, कहा, "एक रात के लिए अपनी मां के यहाँ रुक जाओ।" वह बोला, "मेरी मां की कोठरी के ऊपर छत नहीं—है केवल आकाश।" मल्लिका, यदि तू मां होती तो समझती कि यह बात कितनी कठोर है! वज्र देवता के हाथ का है किन्तु, वह तो है वज्र। छाती क्या विदीर्ण नहीं हो जाती! उसी विदीर्ण छाती के छिद्रों में से होकर वह रास्ते पर जाने वाले श्रमणों का गर्जन मेरे अस्थि-पंजर के भीतर प्रतिध्वनित हो कर चक्कर काट रहा है—बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि!

मल्लिका

यह क्या महारानी, मंत्रोच्चारण के साथ साथ आज भी आप नमस्कार करती हैं!

लोकेश्वरी

वही तो आफत है ! मल्लिका, दुर्बल का धर्म मनुष्य को दुर्बल बनाता है। दुर्बल बनाना ही इस धर्म का उद्देश्य है। जितने ऊंचे माथे हैं उन सब को नीचा कर के छोड़ेगा। ब्राह्मण से कहेगा सेवा करो, क्षत्रिय से कहेगा भिक्षा माँगो। इसी धर्म के विष को जान बूझ कर मैं ने अपने रक्त में बहुत दिन तक पाला है। इस कारण आज मैं ही इस से सब से अधिक डरती हूं ! वह कौन आ रहा है ?

मल्लिका

राजकुमारी वासवी। पूजास्थल पर जाने के लिए तैयार हो कर आई हैं।

वासवी का प्रवेश

लोकेश्वरी

पूजा को चली हो ?

वासवी

हाँ।

लोकेश्वरी

तुम तो अब सयानी हो गई।

वासवी

हमारे व्यवहार में उस का क्या कोई अनोखापन देखती हैं ?

लोकेश्वरी

भोली बच्ची ! सुना है, तुम्हीं लोग कहती फिरती हो, अहिंसा परमो धर्मः !

वासवी

हम लोगों से जिन की कहीं अधिक उमर है, वे ही ज्यादा कहते फिर रहे हैं; हम तो केवल मुँह से घोखा करती हैं।

लोकेश्वरी

नासमझ को किस प्रकार समझाऊं कि अहिंसा ऐरे-गैरों का धर्म है ! हिंसा है क्षत्रिय की विशाल बाहु पर माणिक्य का अंगद, निष्ठुर तेज से दीप्यमान।

वासवी

शक्ति का क्या कोमल रूप नहीं ?

लोकेश्वरी

है, जहाँ वह डुबोती है। जहाँ वह दृढ़ कर के बाँधती है, वहाँ नहीं। पर्वत को सृष्टिकर्त्ता ने निष्ठुर पत्थर का बनाया है, कीचड़ का नहीं। तुम्हारे गुरु की कृपा से ऊपर से नीचे तक सभी क्या कीचड़ हो जाँय ? राजघर में पल कर भी इस बात को मानते घृणा नहीं होती ? चुप क्यों रह गई ?

वासवी

सोच देखूँ, महारानी।

लोकेश्वरी

सोचने की बात ही क्या है ! अपनी आँखों के सामने-

सामने देख तो लिया, राजकुमार एक घड़ी में राजा होना भूल गया। कह गया कि चराचर पर दया करने की साधना करूंगा। सुना नहीं, वासवी ?

वासवी

सुना है।

लोकेश्वरी

तो फिर निर्दयता करने का गुरुतर कार्य कौन करेगा ? कोई भी यदि न करे तो फिर वीरभोग्या वसुन्धरा की क्या गति होगी ? तरह तरह के माथा-झुकाये, उपवासजीर्ण, क्षीणकण्ठ, मन्दाग्निम्लान निर्जीवों के हाथों उस की दुर्गति की कोई हद रह जायेगी ? तुम लोग क्षत्रिय ललना हो, यह बात तुम्हें इतनी नई-सी क्यों लगती है वासवी ?

वासवी

यह पुरानी बात हठात् आज जैसे एक ही दिन में ढँक गई— वसन्त में निष्पत्र किंशुक की शाखा जिस तरह फूलों से ढँक जाती है।

लोकेश्वरी

कभी कभी बुद्धिभ्रंश होने पर पुरुष अपना पौरुष धर्म भूल जाते हैं, किन्तु नारी उसे यह भूलने दे तो मौत है उस नारी की ही ! महा-लता के लिए क्या महावृक्ष की जरूरत नहीं ? प्रत्येक वृक्ष का झाड़ होना क्या उस के लिए अच्छा है ? बोल न। मुंह में तो कहीं उत्तर नहीं !

वासवी

महावृक्ष चाहिए, नहीं तो क्या।

लोकेश्वरी

किन्तु वनस्पति निर्मूल करने के लिए ही आये हैं ये तुम्हारे गुरु। तिस पर भी, परशुराम की तरह हाथ में कुठार धारण करें ऐसी उन में शक्ति कहाँ। कोमल शास्त्र वाक्यों के कीड़े नीचे ही नीचे लगा कर मनुष्यत्त्व की मज्जा को जीर्ण कर देंगे ये। बिना युद्ध ही पृथ्वी को निःक्षत्रिय कर देंगे। उन का भी कार्य पूर्ण होगा और तुम राजकन्याएँ सिर मुँडवा भिक्षापात्र हाथ में लेकर मारी मारी फिरोगी! ऐसा हो कि उसके पहले ही तुम सब मर जाओ, यही मेरा आशीर्वाद है। क्या सोच रही हो? बात क्या मन में नहीं बैठ रही है?

वासवी

अच्छी तरह सोच देखूं।

लोकेश्वरी

सोच कर देखने की जरूरत नहीं, प्रमाण लो। आर्यपुत्र बिम्बिसार क्षत्रिय राजा हैं, राजत्व तो कोई उन के भोग की वस्तु नहीं, उसी में उन की धर्म-साधना है। किन्तु न जाने किस ऊसर के धर्म ने उन के कानों में मंत्र दिया नहीं कि बस इतने सहज ही में वे राजत्व से खिसक पड़े—अस्त्र हाथों नहीं, रणक्षेत्र में नहीं, मृत्यु के मुख पर भी नहीं। वासवी, एक दिन तुम भी राजमहिषी होगी इस आशा को त्याग दिया है तुम ने?

वासवी

क्यों त्यागूं ?

लोकेश्वरी

तो पूछती हूं, भला दया-मंत्र की हवा से जो राजा सिंहासन के ऊपर केवल लड़खड़ाता रहे, राजदण्ड जिस के हाथ में शिथिल हो, राजतिलक जिस के ललाट पर म्लान हो, उस को श्रद्धापूर्वक वरण कर सकोगी ?

वासवी

ना।

लोकेश्वरी

अपनी बात कहूं। महाराज बिम्बिसार ने संवाद भेजा है कि वे आज आयेंगे। उन की इच्छा है कि मैं प्रस्तुत रहूं। तुम लोग समझती हो कि मैं उन के लिए साज करूंगी! जो मनुष्य राजा भी नहीं, भिक्षु भी नहीं, जो मनुष्य भोग में भी नहीं, त्याग में भी नहीं, उस की अभ्यर्थना! कभी नहीं। वासवी, तुम से बारबार कहती हूं, इस पौरुषहीन आत्मावमानना के धर्म को किसी तरह स्वीकार न करना।

मल्लिका

राजकुमारी, किधर चली हो ?

वासवी

घर को।

मल्लिका

इस ओर नटी जो तैयार हो आई !

वासवी

रहने दे, रहने दे।

(प्रस्थान)

मल्लिका

महारानी, सुन रही हो ?

लोकेश्वरी

सुन तो रहा हूं। बड़ा कोलाहल है।

मल्लिका

जरूर ये लोग आ पहुंचे है।

लोकेश्वरी

किन्तु, यह जो अभी भी सुन रही हूं, नमो—

मल्लिका

सुर बदला है। "नमो बुद्धाय" की गर्जन और भी प्रबल हो उठी है, आघात पाकर ही। साथ ही साथ वह सुनो—"नमः पिनाकहस्ताय !" भय की अब कोई बात नहीं।

लोकेश्वरी

टूटा रे टूटा ! जब सब कुछ धूल में मिल जायगा, तब कौन जानेगा कि मैं ने उस में कितना प्राण ढाला था। हाय रे, कितनी भक्ति को ! मल्लिका, यह टूटने का काम शीघ्र हो जाय तो बच जाऊँ—उस की नींव जो मेरी छाती के भीतर है।

रत्नावली का प्रवेश

रत्ना, तुम भी चली हो पूजा को ?

रत्नावली

भ्रम वश पूज्य का पूजन नहीं कर सकती, किंतु अपूज्य की पूजा करने का अपराध मुझ से नहीं होता।

लोकेश्वरी

तब फिर कहाँ जा रही हो ?

रत्नावली

महारानी के पास ही यहाँ आई हूं। एक आवेदन है।

लोकेश्वरी

क्या है, कहो।

रत्नावली

वह नटी यदि यहाँ पूजा का अधिकार पाये तो फिर इस अपवित्र राजमहल में मैं न रह सकूंगी।

लोकेश्वरी

विश्वास दिलाती हूं, आज यह पूजा न हो पायेगी।

रत्नावली

आज न हुई तो कल होगी।

लोकेश्वरी

भय नहीं, बेटी, इस पूजा को जड़ से उखाड़ दूंगी।

रत्नावली

जो अपमान सहन किया है, उस से भी उस का प्रतिकार न होगा।

लोकेश्वरी

तुम यदि राजा के पास आवेदन करो तो नटी का निर्वासन,— यहीं क्या, प्राणदण्ड तक हो सकता है।

रत्नावली

यह तो उस का गौरव बढ़ा देना होगा।

लोकेश्वरी

तो तुम्हारी क्या इच्छा है?

रत्नावली

वह जहाँ पर पुजारिन हो कर पूजा करने जाने वाली थी वहीं पर उसे नटी हो कर नाचना होगा। मल्लिका, तुम तो चुप ही रह गई! तुम क्या कहती हो?

मल्लिका

प्रस्ताव तो कौतुकजनक है।

लोकेश्वरी

मेरा मन तो गवाही नहीं दे रहा है रत्ना!

रत्नावली

देखती हूं उस नटी के ऊपर महारानी की अब भी दया है।

लोकेश्वरी

दया! कुत्तों से उस के मांस को नुचवा सकती हूं। मुझे दया!

अनेक बार अपने हाथों वहाँ पर पूजा की है मैं ने। पूजा की वेदी चाहे टूट जाय, उसे भी सह लूंगी। किन्तु राजरानी के पूजा के आसन पर आज नटी का चरणाघात!

रत्नावली

ढिठाई माफ करना। उतनी-सी व्यथा को यदि प्रश्रय दें तो उस व्यथा के ऊपर ही पूजा की टूटी वेदी बार-बार बनती जायगी।

लोकेश्वरी

यह भय मन में एकदम ही न हो, सो बात भी नहीं।

रत्नावली

मोह में पड़ कर जिस मिथ्या को सम्मान दिया था उस को दूर हटा देने ही से मोह नहीं कटता; उस मिथ्या का अपमान करें,तब मुक्ति पायेंगी।

लोकेश्वरी

मल्लिका, वह सुनो। उद्यान की ओर से आवाज आ रही है। तोड़ डाला, सब तोड़ डाला। ॐ नमो—जाय, जाय, टूट जाय।

रत्नावली

चलो न, महारानी, देख आवें!

लोकेश्वरी

जाऊंगी, जाऊंगी, किन्तु अभी नहीं।

रत्नावली

मैं देख आती हूं। (प्रस्थान)

लोकेश्वरी

मल्लिका, बन्धन तोड़ने में बड़ा दर्द है।

मल्लिका

तुम्हारी आँखों से तो आँसू गिर रहे हैं।

लोकेश्वरी

वह सुनती नहीं, "जय काली कराली"—और ध्वनियाँ क्षीण हो आईं, यह मैं सह नहीं सकती।

मल्लिका

बुद्ध के धर्म को निर्वासित करें फिर भी वह लौट आयेगा—किसी और धर्म से उसे दबाये बिना चैन नहीं। देवदत्त से जब नूतन मंत्र लोगी तभी सान्त्वना पावोगी।

लोकेश्वरी

छि, छि, बोलो मत, बोलो मत, यह बात मुँह पर न लाना! देवदत्त है क्रूर सर्प, नरक का कीड़ा! जब अहिंसा व्रत लिया था तब मन ही मन उस को प्रतिदिन दग्ध किया है, विद्ध किया है मैं ने। और आज! जिस आसन पर मैं ने अपने उस परम निर्मल ज्योतिर्भासित महागुरु को स्वयं ही लाकर बिठलाया, उन के उसी आसन पर देवदत्त को बुला लाऊंगी! (घुटने टेक कर) क्षमा करो प्रभो, क्षमा करो! "द्वारत्रयेण कृतं सर्वं अपराधं क्षमतु मे प्रभो!" (उठ कर) भय नहीं, मल्लिका, मुझ में भीतर जो उपासिका है वह रहे भीतर ही, बाहर तो है निष्ठुरा, है राजकुलवधू, उस को कोई परास्त न

कर सकेगा। मल्लिका, अपने निर्ज्जन निवास में चल कर बैठूं, जब धूल के समुद्र में मेरी इतने दिनों की आराधना की तरणी एकदम ही डूब जायगी, तब मुझे पुकारना।

दोनों का प्रस्थान

(धूप दीप गंधमाल्य मंगलघट आदि पूजोपकरण लेकर राजमहल की स्त्रियों के एकदल का प्रवेश)

(पुष्प-पात्र को घेर कर सभी)

वण्ण-गंध-गुणोपेतं एतं कुसुम संततिं
पूजयामि मुनिन्दस्स सिरि-पाद-सरोरुहे ॥

(प्रणाम और शंखध्वनि)

(धूप-पात्र को घेर कर)

गन्ध-संभार-युक्तेन धूपेनाहं सुगंधिना
पूजये पूजनेय्यन्तं पूजाभाजनमुत्तमं ॥

(शंखध्वनि और प्रणाम)

श्रीमती

(प्रदीप के थाल को घेर कर)

घनसारप्पदित्तेन दीपेन तमधंसिना।
तिलोकदीपं सम्बुद्धं पूजयामि तमोनुदं ॥

(शंखध्वनि और प्रणाम)

(आहार्य्य नैवेद्य को घेर कर)

अधिवासेतु नो भन्ते, भोजनं परिकप्पितं
अनुकम्पं उपादाय पतिगण्हातुमुत्तमं ।

(शंखध्वनि और प्रणाम)

(घुटने टेक कर)

यो सन्निसिन्नो वरबोधिमूले
मारं ससेनं महतिं विजेत्वा
सम्बोधिमागच्छि अनन्त ञाणो
लोकुत्तमो, तं पणमामि बुद्धं ।

श्रीमती

बन के प्रवेश-पथ में पूजा सम्पन्न हुई । अब चलो स्तूप-मूल के पास ।

मालती

किन्तु श्रीमती दीदी, यह देख, इस ओर का मार्ग झाड़ से बन्द है ।

श्रीमती

बाड़ लाँघ कर जा सकेंगी, चलो ।

नन्दा

मालूम होता है कि राजा का निषेध है ।

श्रीमती

किन्तु प्रभु का आदेश है।

नन्दा

कितना भयंकर गर्जन है। यह क्या राष्ट्र-विप्लव है ?

श्रीमती

गान आरम्भ करो।

गान

बाँधन-छेंड़ार साधन हबे।
छेड़े याब तीर माभैः रबे।
जाँहार हातेर विजयमाला
रुद्रदाहेर वह्निज्वाला,
नमि नमि नमि से भैरवे॥
काल-समुद्रे आलोर जात्री
शून्ये ये धाय दिवसरात्रि।
डाक एलो तार तरङ्गेरि,
बाजुक वक्षे वज्रभेरी
अकूल प्राणेर से उत्सवे॥*

---

* बंधन तोड़ने की साधना होगी। मा भैः, (मत डरो) की आवाज के साथ किनारा छोड़ दूंगी। जिस के हाथ की जयमाला रुद्रदाह की अग्नि-ज्वाला है, उस भैरव को बार बार प्रणाम है। कालरूपी समुद्र में प्रकाश का यात्री जो दिन-रात शून्य में दौड़ता है, उस के तरंग की ही पुकार आई है; अकूल प्राणों के उस उत्सव में मेरे वक्षःस्थल में वज्र की भेरी बजे।

(अन्तःपुर की रक्षिणियों के एक दल का प्रवेश)

रक्षिणी

लौटो तुम लोग यहाँ से।

श्रीमती

हम लोग प्रभु की पूजा को निकली हैं।

रक्षिणी

पूजा बन्द है।

श्रीमती

आज प्रभु का जन्मोत्सव है।

रक्षिणी

पूजा बन्द है।

श्रीमती

यह भी क्या सम्भव है ?

रक्षिणी

पूजा बन्द है। मैं और कुछ नहीं जानती। दो अपना अर्घ्य।

(पूजा का थाल आदि छीनना)

श्रीमती

यह क्या परीक्षा है मेरी ! अपराध हुआ है क्या कोई ?

उत्तमङ्गेन बन्देहं पादपंसू वरुत्तमं

बुद्धे यो खलितो दोसो, बुद्धो खमतु तं मम।

रक्षिणी

बन्द करो स्तव।

श्रीमती

द्वार के निकट ही रुकावट! मेरा प्रवेश भी नहीं हुआ, नहीं हुआ।

मालती

रोती क्यों हो श्रीमती दीदी! बिना अर्घ्य के, बिना मंत्र के पूजा नहीं होती? भगवान् तो हमारे मन के भीतर ही जनमे हैं।

श्रीमती

सिर्फ वही नहीं मालती, उनके जन्म में हम सभी ने जन्म लिया है। आज सभी का जन्मोत्सव है।

नन्दा

श्रीमती, हठात् एक मुहूर्त्त में ही आज ऐसे दुर्दिन की घटा क्यों घुमड़ आई?

श्रीमती

आज तो दुर्दिन के सुदिन हो उठने का ही दिन है। जो टूटा है वह जुड़ जायेगा, जो गिरा है वह अब फिर उठेगा।

अजिता

देखो श्रीमती, अब मुझे लगता है कि तुम को जो पूजा करने का भार दिया गया था, उस में निश्चय ही भूल है। इसी से सब कुछ नष्ट हुआ। पहले ही हमें समझ लेना चाहिए था।

श्रीमती

मैं डरती नहीं। जानती हूं कि पहले से ही कोई

मंदिर का द्वार खुला नहीं पाता। धीरे-धीरे ही कपाट खुलते हैं। तब भी मुझे यह कहते कोई संकोच नहीं कि प्रभु ने मेरा आवाहन किया है। बाधा कट जायेगी। आज ही कट जायेगी।

भद्रा

राज-बाधा को भी दूर कर सकोगी?

श्रीमती

वहाँ तक राजा का राज-दण्ड पहुँचता ही नहीं।

रत्नावली का प्रवेश

रत्नावली

क्या कह रही थी, सुन लिया मैं ने, सुन लिया। तुम राज-बाधा भी नहीं मानतीं, तुम्हारा इतना साहस!

श्रीमती

पूजा में राजा की बाधा ही नहीं।

रत्नावली

नहीं है राजा की बाधा? सच ही नहीं क्या? जाना तुम पूजा करने, मैं देखूंगी दोनों आँखों की साध पूरी करके।

श्रीमती

जो अन्तर्यामी हैं वे ही देखेंगे। बाहर से सब दूर कर दिया उन्होंने, उस से रुकावट पड़ती थी। अब

वचसा मनसा चेव वन्दामेते तथागते
सयने आसने ठाने गमने चापि सब्बदा।

रत्नावली

तुम्हारे दिन इस बार पूरे हो आये हैं, अहंकार नष्ट होगा।

श्रीमती

सो तो होगा ही। कुछ भी बाकी न रहेगा, कुछ भी नहीं।

रत्नावली

अब मेरी बारी है। मैं तैयार हो कर आती हूं। (प्रस्थान)

भद्रा

कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है। वासवी बुद्धिमती है, वह पहले ही कहीं खिसक गई।

अजिता

मुझे न जाने कैसा भय लग रहा है।

उत्पलपर्णा का प्रवेश

नन्दा

भगवति, किधर चली हैं?

उत्पलपर्णा

उपद्रव आया है नगर में, धर्म पीड़ित है, श्रमण लोग शंकित हैं, मैं पौर-पथ पर रक्षा-मंत्र पढ़ने चली हूं।

श्रीमती

भगवति, मुझे साथ न ले जाओगी?

उत्पलपर्णा

कैसे ले चलूं? तुम्हें जो पूजा का आदेश है।

श्रीमती

पूजा का आदेश अब भी है देवि ?

उत्पलपर्णा

समाधान न होने तक उस आदेश का तो अवसान नहीं।

मालती

मातः, किन्तु राजा की बाधा जो है।

उत्पलपर्णा

भय नहीं, धीरज धरो। वह बाधा अपने आप ही पथ बना देगी। (प्रस्थान)

भद्रा

सुनती हो अजिता, रास्ते में वह क्रन्दन है, या गर्जन !

नन्दा

मुझे तो ऐसा लगता है कि उद्यान के भीतर कुछ लोग घुस कर तोड़-फोड़ कर रहे हैं। श्रीमती जल्दी चलो, राजमहिषी माता के निवास में जाकर शरण लें। (प्रस्थान)

भद्रा

आओ अजिता, यह सभी कुछ एक दुःस्वप्न जैसा प्रतीत हो रहा है। (राजकुमारी आदि का प्रस्थान)

मालती

दीदी, बाहर से यह मृत्यु का रुदन सुनने में आरहा है। आकाश में देखती हो वह शिखा। मालूम होता है कि नगर में आग लग गई। जन्मोत्सव में मृत्यु का यह तांडव क्यों ?

श्रीमती

मृत्यु के सिंहद्वार में से ही तो जन्म की जय-यात्रा होती है।

मालती

मन में भय के आने से बड़ी लज्जा हो रही है दीदी। पूजा करने जाऊं और साथ में भय ले जाऊं, यह मुझ से सहा नहीं जाता।

श्रीमती

तुझे किस बात का भय बहन ?

मालती

विपद् का भय नहीं। कुछ भी तो नहीं सूझता, अँधेरा जान पड़ता है, इसी से भय है।

श्रीमती

अपने आप को बाहर न देख। आज जिन का अक्षय-जन्म है उन्हीं में अपने को देख, तेरा भय मिट जायगा।

मालती

तुम गान गाओ दीदी, मेरा भय दूर हो जायगा।

श्रीमती

गान

आर रेखोना आँधारे आमाय
देख्ते दाओ।
तोमार माझे आमार आपनारे
आमाय देखते दाओ॥

काँदाओ यदि काँदाओ एबार,
सुखेर ग्लानि सय ना ये आर,
जाक् ना धुये नयन आमार
अश्रु-धारे ;
आमाय देखते दाओ ॥
जानिना तो कोन् कालो एइ छाया !
आपन ब'ले भुलाय यखन
घनाय विषम माया ।
स्वप्न भारे ज'मल बोझा,
चिरजीवन शून्य खोंजा,
ये मोर आलो लुकिये आछे
रातेर पारे
आमाय देखते दाओ ॥*

(अन्तःपुर की एक रक्षिणी का प्रवेश)

रक्षिणी

सुनो, सुनो, श्रीमती !

---

* अब और मुझे अंधकार में न रखो, देखने दो। अपने में मुझे अपने-निज को देखने दो। रुलाओ यदि इस बार रुलाना ही हो, सुख की ग्लानि अब सही नहीं जाती, अश्रु-धारा से मेरे नेत्र अब धुल जाँय ; मुझे देखने दो। जानती नहीं कौन है यह काली छाया ! अपने बल से जब भुलाती है (तो) विषय-माया सघन हो उठती है। स्वप्नों के भार से बोझा बढ़ गया, शून्य है चिरजीवन की खोज। इस ने मेरे प्रकाश को ढँक कर छिपा रखा है, (उस) रात्रि के पार मुझे देखने दो।

मालती

क्यों निठुर हो रही हो तुम सब? हमें चले जाने को और न कहो! हम दो लड़कियां उद्यान के निकट मिट्टी के ऊपर बैठी रहें न—इस से तुम्हारा क्या बिगड़ेगा?

रक्षिणी

भला इस से तुम्हारा ही क्या प्रयोजन है?

मालती

भगवान् बुद्ध ने जिस उद्यान में एक दिन प्रवेश किया था उस के आखिरी किनारे भी उन की पद-धूलि है। तुम यदि भीतर न भी जाने दो तो हम यहीं उसी धूलि पर बैठ कर अपने हृदय में उन के जन्मोत्सव को ग्रहण करें—मंत्र भी न कहेंगी, अर्घ्य भी न देंगी।

रक्षिणी

मंत्र क्यों न बोलोगी? बोलो, बोलो। उसे सुनने भी न पाऊं, इतना क्या पाप किया है! अन्य रक्षिणियाँ दूर हैं, इस समय आज के इस पुण्य दिन को श्रीमती तुम्हारे मधुर कंठ से प्रभु का स्तव सुन लूं। तुम जानती हो मैं उन की दासी हूं। जिस दिन वे अशोक-छाया में आये थे उस दिन मैं ने उन्हें जो इन पाप-चक्षुओं से देखा था, उसी समय से वे मेरे हृदय में हैं।

श्रीमती

नमो नमो बुद्ध दिवाकराय,
नमो नमो गोतम-चन्द्रिमाय।

नमो नमो' नन्तगुणन्नवाय,

नमो नमो साकियनन्दनाय ॥

रक्षिणी, तुम भी मेरे साथ साथ बोलो ।

रक्षिणी

मेरे मुँह से क्या पुण्य-मंत्र निकलेगा ?

श्रीमती

हृदय में भक्ति है, जो बोलोगी वही पुण्य-मंत्र होगा। बोलो, नमो नमो बुद्ध दिवाकराय—

(क्रम-क्रम से आवृत्ति करवा लेती हैं)

रक्षिणी

मेरी छाती का बोझ उतर गया श्रीमती, आज का दिन मेरा सार्थक हुआ ।—जो बात कहने आई थी अब वह कह लूं। तुम यहाँ से भाग जाओ, मैं तुम्हें रास्ता किये देती हूं ।

श्रीमती

क्यों ?

रक्षिणी

महाराज अजातशत्रु ने देवदत्त से दीक्षा ली है। उन्होंने प्रभु का अशोक-तले वाला आसन तोड़ दिया है।

मालती

हाय हाय दीदी, हाय हाय, मैं उसे देख न पाई। मेरा भाग्य खोटा है, टूट गया सब ।

श्रीमती

क्या कहती है मालती ! उन का आसन अक्षय है। महाराज बिम्बिसार ने जिसे गढ़वाया था, वही टूटा है। प्रभु के आसन को क्या पत्थर के द्वारा पक्का करना होगा ? भगवान् की अपनी महिमा ही उस की रक्षा करती है।

रक्षिणी

राजा ने घोषणा की है कि वहाँ पर जो कोई आरती कर के स्तव मंत्र पढ़ेगा, उसे प्राण-दंड होगा। श्रीमती, तो फिर तुम यहाँ पर क्या करोगी ?

श्रीमती

प्रतीक्षा करती रहूंगी।

रक्षिणी

कब तक ?

श्रीमती

जब तक पूजा की पुकार न आये ! जब तक जीती हूं, तब तक।

रक्षिणी

आज तुम से पहले ही क्षमा माँगती हूं श्रीमती।

श्रीमती

किस बात की क्षमा ?

रक्षिणी

शायद राजा के आदेश से तुम पर भी आघात करना पड़ेगा।

श्रीमती

करो आघात।

रक्षिणी

वह आघात तो होगा राजमहल की नटी के ऊपर, किन्तु प्रभु की भक्त सेविका को आज भी मेरा प्रणाम, उस दिन भी मेरा प्रणाम, मुझे क्षमा करो।

श्रीमती

मेरे प्रभु मुझे सारे आघात क्षमा करने का वर दें! बुद्धो खमतु, बुद्धो खमतु।

अन्य रक्षिणियों का प्रवेश

दूसरी रक्षिणी

रोदिनी!

पहली रक्षिणी

क्या पाटली।

पाटली

भगवती उत्पलपर्णा को इन्होंने मार डाला है।

रोदिनी

अनर्थ हो गया, अनर्थ!

श्रीमती

किस ने मारा?

पाटली

देवदत्त के शिष्यों ने।

रोदिनी

तो रक्तपात शुरू हुआ। ऐसा यदि हो भी गया तो फिर हमारे हाथों में भी अस्त्र हैं। यह पाप निभेगा नहीं। यह तो प्रभु के संघ को मारा गया। श्रीमती क्षमा से काम नहीं चलेगा, अस्त्र पकड़ो!

श्रीमती

लोभ मत दिखाओ रोदिनी। मैं नटी हूं, तुम्हारी वह तलवार देख कर मेरे ये नाच के हाथ भी चंचल हो उठे।

पाटली

तो यह लो (तलवार देती है)।

श्रीमती

(सिहर कर हाथ से तलवार गिर पड़ती है) ना, ना। मैं ने प्रभु के पास से अस्त्र पाया है। चल रहा है मेरा युद्ध, मार परास्त हो, प्रभु की जय हो।

पाटली

चल रोदिनी, भगवती की मृत-देह श्मशान को ले चलनी होगी। (दोनों का प्रस्थान)

कुछ रक्षिणियों सहित रत्नावली का प्रवेश

रत्नावली

ओहो, यह तो यहीं है। उसे राजा का आदेश सुना दो।

रक्षिणो

महाराज का आदेश यह है कि तुम नटी हो, तुम को अशोक-बन में नाचने के लिए जाना होगा।

श्रीमती

नाच! आज!

मालती

तुम यह क्या बात कह रही हो जी? ऐसा आदेश देते महाराज को भय न हुआ?

रत्नावली

भय होने की ही तो बात है। वही दिन तो आया है। अपनी नटी दासी से भय करेंगे राजेश्वर! उजड्डु गँवार!

श्रीमती

नाच किस समय होगा?

रत्नावली

आज आरती के समय।

श्रीमती

प्रभु की आसन-वेदी के सामने?

रत्नावली

हाँ।

श्रीमती

तो ऐसा ही हो!

(सभी का प्रस्थान)

भिक्षुओं का प्रवेश और गान

हिंसाय उन्मत्त पृथ्वी, नित्य निठुर द्वन्द्व
घोर कुटिल पन्थ ता'र लोभ जटिल बन्ध ।
नूतन तव जन्म लागि' कातर सब प्राणी
कर' त्राण महाप्राण, आन' अमृत वाणी,
विकसित कर' प्रेमपद्म चिर मधु-निष्यन्द ।
शान्त हे, मुक्त हे, हे अनन्तपुण्य,
करुणाघन, धरणीतल, कर' कलंकशून्य ॥

एस' दानवीर दाओ त्यागकठिन दीक्षा,
महाभिक्षु लओ सबार अहंकार भिक्षा ।
लोक लोक भुलुक शोक खण्डन कर' मोह,
उज्ज्वल होक ज्ञान-सूर्य्य उदय-समारोह,
प्राण लभुक् सकल भुवन नयन लभुक् अन्ध ।
शान्त हे, मुक्त हे, हे अनन्तपुण्य,
करुणाघन, धरणीतल कर' कलंकशून्य ॥

क्रन्दनमय निखिल हृदय तापदहनदीप्त,
विषय-विष-विकार-जीर्ण दीर्ण अपरितृप्त ।
देश देश परिल तिलक रक्त कलुष ग्लानि,
तव मंगल शंख आन' तव दक्षिण पाणि ।

तव शुभ संगीत राग तव सुन्दर छन्द।
शान्त हे, मुक्त हे, हे अनन्तपुण्य,
करुणाघन धरणीतल, कर' कलंकशून्य ॥*

---

* हिंसा से धरणी उन्मत्त है, नित्य निष्ठुर द्वन्द्व हो रहा है। उस का (धरणी का) पंथ घोर टेढ़ा-मेढ़ा है और उस का बंधन लोभ-जटिल है। तुम्हारे नूतन जन्म के हेतु सब प्राणी कातर हो रहे हैं। हे महाप्राण, (आकर) त्राण करो, अपनी अमृत-वाणी को लाओ, चिरन्तन मधु के निर्झर प्रेम-पद्मको विकसित करो। हे मुक्त, हे अनन्तपुण्य, हे करुणा के घन (तुम) पृथ्वी तल को कलंक शून्य कर दो।

हे दानवीर, आकर त्याग की कठिन दीक्षा दो। हे महाभिक्षु, सब के अहंकार की भिक्षा ग्रहण करो। सभी लोक शोक भूल जावें, (तुम) मोह का अन्त कर दो। ज्ञान-सूर्य का उदय-समारोह आलोकित हो। सभी भुवन प्राण-प्रेरित हों (और) अन्धे नयन-लाभ करें। हे शान्त, हे मुक्त, हे अनन्त-पुण्य, हे करुणा-घन, पृथ्वी तल को कलंक शून्य कर दो।

ताप की ज्वाला से दीप्त निखिल हृदय क्रन्दनमय है, और (सब) विषय-विष के विकार से जीर्ण नष्टप्रायः और अतृप्त है। देश-देश ने रक्त कलुष और ग्लानि का टीका पहन लिया है। (तुम) अपने मंगल-शंख को लाओ, अपना दाहिना हाथ बढ़ाओ। हे शान्त, हे मुक्त, हे अनन्तपुण्य, हे करुणाघन, पृथ्वी तल को कलंक शून्य कर दो।

तृतीय अंक

राजोद्यान

मालती और श्रीमती

मालती

दीदी, कुछ चैन नहीं मिलता।

श्रीमती

क्या हुआ ?

मालती

तुम को जब वे नाच का साज कराने ले गईं तो मैं ने चुप-चाप उस प्राचीर के पास जाकर रास्ते की ओर दृष्टि डाली। देखती क्या हूं कि भिक्षुणी उत्पलपर्णा की मृत-देह लेकर चले जा रहे हैं और,—

श्रीमती

थम क्यों गई ? बोल न।

मालती

नाराज तो न होगी दीदी ? मैं बड़ी दुर्बल हूं !

श्रीमती

बिल्कुल नहीं।

मालती

देखा कि अंत्येष्टि मंत्र पढ़ते-पढ़ते शव के साथ-साथ जा रहे थे।

श्रीमती

कौन जा रहे थे ?

मालती

दूर से ऐसा लगा कि जैसे वे ही हों।

श्रीमती

असम्भव नहीं।

मालती

प्रण किया था, जब तक मुक्ति न पाऊं, उन को दूर से भी न देखूंगी।

श्रीमती

तो उसी प्रण को निभा। समुद्र की ओर अनिमेष ताकते रहने से तो पार देखा नहीं जाता! दुराशा में मन को न भुला।

मालती

उन को देखने की आशा से मन को आकुल कर रही हूं, यह न समझो। भय है कि वे लोग उन्हें मारेंगे। इसी से पास रहना चाहती हूं। प्रण नहीं रख पा रही हूं, यह समझ मेरा अपमान न करो दीदी।

श्रीमती

मैं क्या तेरी व्यथा समझती नहीं ?

मालती

उन को बचा तो न सकूंगी, किन्तु स्वयं मर तो सकती हूं। अब सह न सकूंगी दीदी, अब की तो सब टूट ही गया। इस जीवन में मुक्ति न होगी।

श्रीमती

जिन के पास जा रही है वही तुझे मुक्ति दे सकते हैं। क्यों कि वे मुक्त हैं। तेरी बात सुन कर आज एक बात समझ पाई हूं।

मालती

क्या समझीं दीदी !

श्रीमती

अब भी मेरे हृदय के भीतर पुराना घाव दबा हुआ है, वह फिर दुख गया। बन्धन को बाहर से जितना ही अधिक भगाया है उतना ही वह भीतर जा छिपा।

मालती

राजमहल में तुम जैसा एकाकी प्राणी कोई और नहीं, इसी से तुम्हें छोड़ कर जाने में बड़ा कष्ट पा रही हूं। किन्तु जाना ही पड़ा। जब समय पाओ मेरे लिए क्षमा का मंत्र पढ़ना।

श्रीमती

"बुद्धे यो खलितो दोसो,
बुद्धो खमतु तं मम।"

मालती

(प्रणाम करते करते) "बुद्धो खमतु तं मम।" चलते चलाते एक गान सुनादो। किन्तु तुम्हारे उस मुक्ति के गान को आज जरा भी मन न दे पाऊंगी। रास्ते का कोई एक गान गाओ।

श्रीमती का गान

पथे येते डेकेछिले मोरे।
पिछिये पड़ेछि आमि याव ये की करे।
एसेछे निबिड़ निशि,
पथरेखा गेछे मिशि',
साड़ा दाओ, साड़ा दाओ आँधारेर घोरे॥
भय हय पाछे घुरे घुरे
जत आमि जाइ तत जाइ चले दूरे।
मने करि आछो काछे
तबु भय हय पाछे
आमि आछि तुमि नाइ कालिनिशि भोरे॥❀

❀ पथ पर जाते हुए (तुम ने) मुझे पुकारा था। (पर) मैं पीछे रह गई हूं, मैं किस तरह (आगे) जाऊं। निविड़ निशा आई है, पथ-रेखा मिट गई है, निविड़ अन्धकार में मेरी सुधि लो। भय लगता है कहीं जितना ही मैं चलती जाऊँ, उतना ही दूर न चली जाऊँ। समझती हूं कि (तुम) पास ही हो, पर तब भी भय लगता है की कहीं मैं रहूं (किन्तु) तुम न रहो, इस काल-रात्रि के प्रभात में।

मालती

सुनो दीदी, फिर गर्जन! दया नहीं, किसी को भी दया नहीं! अनन्त कारुणिक बुद्ध ने इस पृथ्वी पर पदार्पण किया है, तिस पर भी यहाँ नरक की शिखा शान्त न हुई! अब देरी नहीं कर सकती। प्रणाम, दीदी! जब मुक्ति पाओ तो मुझे एक बार आवाज देना, एक बार अन्तिम चेष्टा कर देखना।

श्रीमती

चल, तुझे प्राचीर द्वार तक पहुँचा आऊं।

(दोनों का प्रस्थान)

रत्नावली और मल्लिका का प्रवेश

रत्नावली

देवदत्त के शिष्यों ने भिक्षुणी को मारा है! उस के लिए इतना सोच-विचार किस बात का? वह तो उस खेतिहर की लड़की थी।

मल्लिका

किन्तु, आज तो वह भिक्षुणी है।

रत्नावली

मंत्र पढ़ने से क्या रक्त बदल जाता है?

मल्लिका

आजकल तो देखती हूं कि मंत्र का परिवर्तन रक्त के परिवर्तन से कहीं अधिक बढ़ कर है।

रत्नावली

रहने दे वह सब बातें! प्रजा को उत्तेजित देख राजा को चिन्ता! यह मैं नहीं सह सकती। तुम्हारे भिक्षु-धर्म ने राज-धर्म को नष्ट किया है।

मल्लिका

उत्तेजना का और भी तनिक-सा कारण है। महाराज बिम्बिसार पूजा के लिए यात्रा कर के निकले हैं, किन्तु प्रजा संदेह करती है कि अभी पहुँचे नहीं।

रत्नावली

कानाफूसी चल रही है, मैं ने भी सुना है। बात तो अच्छी नहीं, यह मैं मानती हूं। किन्तु कर्म-फल हाथों हाथ दिख रहा है।

मल्लिका

क्या कर्म-फल देखा तुम ने?

रत्नावली

महाराज बिम्बिसार ने पिता के वैदिक धर्म का विनाश किया है। क्या यह पितृ-हत्या से बढ़कर नहीं? ब्राह्मण लोग तो तभी से कह रहे हैं कि यज्ञ की जो अग्नि उन्होंने बुझाई है, वही क्षुधित अग्नि एक दिन उन को खा जायेगी।

मल्लिका

चुप चुप, हौले कहो। जानती तो हो, अभिशाप के भय से वे किस तरह अवसन्न हो गये हैं!

रत्नावली

किस का अभिशाप?

मल्लिका

बुद्ध का अभिशाप। मन ही मन महाराज उन से बड़ा भय करते हैं।

रत्नावली

बुद्ध तो किसी को अभिशाप देते नहीं। अभिशाप देना तो जानता है देवदत्त।

मल्लिका

इसी से उस का इतना मान है। दयालु देवता को मनुष्य बातों ही बातों में बहला लेता है, हिंसालु देवता को देता है कीमती अर्घ्य।

रत्नावली

जो देवता हिंसा करना नहीं जानता, उस को उपवास करना पड़ता है, नख-दन्त-हीन वृद्ध सिंह की तरह।

मल्लिका

जो भी हो, यह कहे जाती हूं, आज संध्या समय इस अशोक-चैत्य में पूजा होगी ही।

रत्नावली

वह हो तो हो, किन्तु नाच उस के पहले ही होगा, यह भी मैं कहे देती हूं।

(मल्लिका का प्रस्थान)

वासवी का प्रवेश

वासवी

तैयार हो कर आई हूं।

रत्नावली

किस लिए ?

वासवी

बदला लेने के लिए। बहुल लज्जित किया है उस नटी ने।

रत्नावली

उपदेश देकर ?

वासवी

ना, भक्ति करा के।

रत्नावली

इसी से छुरी लेकर आई हो ?

वासवी

इस लिए नहीं। राष्ट्र-विप्लव की आशंका है। खतरे में पड़ी तो निहत्थी न मरूंगी।

रत्नावली

नटी से किस तरह बदला लोगी ?

वासवी

(हार दिखला कर) इस हार के द्वारा।

रत्नावली

तुम्हारा हीरे का हार !

वासवी

बहुमूल्य अपमान ही राजकुल के उपयुक्त है। वह नाचेगी और उस के ऊपर पुरस्कार उठा कर फेंक दूंगी।

रत्नावली

वह यदि तिरस्कार कर के वापिस फेंक दे तुम्हारे ऊपर! अगर न ले!

वासवी

(छुरी दिखला कर) तब यह है।

रत्नावली

महारानी लोकेश्वरी को शीघ्र बुला लाओ, वे खूब खुश होंगी।

वासवी

आते हुए मैं ने उन्हें खोजा था। सुना कि किवाड़ देकर कमरे में बंद हैं। राष्ट्र-विप्लव के भय से या पति पर मान करके? कुछ समझ में न आया।

रत्नावली

किन्तु आज नटी का नतिनाट्य होगा, उस में महारानी को उपस्थित रहना चाहिए।

वासवी

नटी का नतिनाट्य। नाम तो खूब गढ़ा है।

मल्लिका का प्रवेश

मल्लिका

जो मन में समझ रही थी वही हुआ। राज्य में जहाँ

जितने बुद्ध के शिष्य हैं, महाराज अजातशत्रु ने उन सभी को बुलाने के लिए दूत भेजे हैं। इस प्रकार ग्रह-पूजा चल ही रही है, कभी शनि-ग्रह तो कभी रवि-ग्रह।

रत्नावली

अच्छा ही हुआ। बुद्ध के जितने शिष्य हैं उन सब को साथ ही देवदत्त के शिष्यों के हाथों सौंप दें। इस से समय की बचत होगी।

मल्लिका

इस लिए नहीं। वे लोग राजा की ओर से अहोरात्र पाप-मोचन मंत्र पढ़ने को आरहे हैं। महाराज एकदम अभिभूत हो उठे हैं।

वासवी

उस से क्या हुआ ?

मल्लिका

कैसा आश्चर्य है! अभी अफवाह तुम्हारे कानों पहुँची ही नहीं! सभी का अनुमान है कि राह में उन लोगों ने महाराज बिम्बिसार की हत्या कर डाली है।

वासवी

सर्वनाश! यह कभी सत्य हो ही नहीं सकता!

मल्लिका

किन्तु यह तो सत्य है कि महाराज के जैसे किसी ने आग लगादी हो। वे किसी एक चिन्ता के मारे छटपटा रहे हैं।

वासवी

हाय, हाय, यह कैसा संवाद है !

रत्नावली

लोकेश्वरी महारानी ने क्या यह सुना है ?

मल्लिका

उन को जो कोई यह अप्रिय संवाद जाकर सुनायेगा उस के वह दो टुकड़े कर डालेंगी। कोई भी साहस नहीं करता।

वासवी

सर्वनाश हुआ। इतने बड़े पाप के आघात से राजघर का कोई भी न बचेगा। धर्म को लेकर मनचाही करना क्या कहीं सहा जा सकता है ?

रत्नावली

यह बात है ! देखती हूं कि वासवी फिर नटी की चैली होने की ओर झुक रही है। भय से खदेड़े जाने पर ही मनुष्य धर्म की मूढ़ता के पीछे जा छिपने की चेष्टा करता है।

वासवी

कभी नहीं। मैं जरा भी नहीं डरती। भद्रा को यह खबर जाकर सुना आऊं।

रत्नावली

झूठा बहाना करके न भागना। डर तुम्हें लगा है। तुम लोगों का यह अवसाद देख कर मुझे बड़ी लज्जा आती है। यह केवल नीच संसर्ग का फल है।

वासवी

तुम यह कैसी बात कहती हो, मैं बिलकुल भी नहीं डरी।

रत्नावली

अच्छा तो अशोक-बन में नाच देखने चलो।

वासवी

क्यों न जाऊंगी! तुम समझती हो कि मुझे जबरदस्ती ले जा रही हो?

रत्नावली

अब देर ठीक नहीं, मल्लिका, श्रीमती को अभी बुलाओ, साज हुआ हो या न हुआ हो। राजकन्याएँ यदि न आना चाहें तो सभी राजकिंकरियों को लाना ही होगा, नहीं तो तमाशा अधूरा ही रह जायगा।

वासवी

यह तो श्रीमती आ रही है। देखो, देखो, जैसे स्वप्न में चल रही हो! जैसे दुपहरी की दीप्त-मरीचिका हो, वह; जैसे अपने में है ही नहीं!

(श्रीमती का धीरे धीरे प्रवेश और गान)

हे महाजीवन, हे महामरण,

लइनु शरण, लइनु शरण।

आँधार प्रदीपे ज्वालाओ शिखा,

पराओ, पराओ ज्योतिर टीका,

करो हे आमार लज्जा हरण॥

परश रतन तोमारि चरण,

लइनु शरण, लइनु शरण,

जा-किछु मलिन, जा-किछु कालो

जा-किछु बिरूप होक् ता भालो,

घुचाओ घुचाओ सब आवरण ॥*

रत्नावली

रास्ता इस ओर है। हमारी बातें क्या कानों में नहीं पहुंच रही हैं? इस ओर, इस ओर। (वासवी से) वासवी, खड़ी क्यों रह गई? चल न।

वासवी

ना, मैं नहीं जाऊंगी।

रत्नावली

क्यों नहीं जाओगी?

वासवी

तो सच बात कहूं। मुझ से न हो सकेगा।

रत्नावली

भय लग रहा है?

---

* हे महाजीवन, हे महामरण, शरण में आती हूं, शरण में आती हूं। (इस) अंधेरे के प्रदीप में शिखा प्रज्वलित कर दो, ज्योति का टीका लगादो, लगादो। अहे, मेरी लज्जा दूर करो। तुम्हारे चरण पारस-मणि हैं, (तुम्हारी) शरण में आती हूं, शरण में आती हूं। (मुझ में) जो कुछ मलिन (और) जो कुछ काला और जो कुछ विरूप हो, वह सब अच्छा हो जाय। (मेरा) सब आवरण दूर कर दो, दूर कर दो।

वासवी

हाँ, भय लग रहा है।

रत्नावली

भय पाते क्या लाज नहीं आती ?

वासवी

जरा भी नहीं। श्रीमती, वही क्षमा-मंत्र पढ़ दो।

श्रीमती

उत्तमंगेन वन्देहं पादपंसू-वरुत्तमं
बुद्धे यो खलितो दोसो बुद्धे खमतुं तं मम।

वासवी

'बुद्धो खमतु तं मम, बुद्धो खमतु तं मम,
बुद्धो खमतु तं मम।'

श्रीमती का गान

हार मानाले, भाँगिले अभिमान।
क्षीण हाते ज्वाला
म्लान दीपेर थाला
ह'ल खान् खान्।
एबार तबे ज्वालो
आपन तारार आलो,
रंगीन छायार एइ गोधूलि होक् अवसान॥
एसो पारेर साथी।
बइल पथेर हाओया, निबल घरेर बाति।

आजि बिजन बाटे
अन्धकारेर घाटे
सब-हारानो नाटे
एनेछि एई गान ॥*

(सब का प्रस्थान)

भिक्षुओं का प्रवेश और गान

सकल कलुष तामस हर'
जय होक् तव जय,
अमृत वारि सिञ्चन कर'
निखिल भुवनमय ।
महाशान्ति महाक्षेम
महापुण्य महाप्रेम ।
ज्ञानसूर्य्य उदय-भाति
ध्वंस करुक तिमिर राति ।
दुःसह दुःस्वप्न घाति'
अपगत कर' भय ॥

---

* (तुम ने) हार मनवाई, अभिमान चूर कर दिया । क्षीण हाथों में जलता म्लान दीप का थाल टुकड़े टुकड़े हो गया । तो अब इस बार अपने तारों का प्रदीप जलाओ । रंगीन छाया वाली इस गोधूलि का अन्त हो । ओ, उस पार के संगी, आओ । पथ की हवा बही (और) घर की बाती बुझ गई । आज विजन मार्ग पर, अन्धकार के घाट पर, सब-कुछ-खो-देने-वाले इस नाच में यह गान लाई हूं ।

महाशान्ति महाक्षेम
महापुण्य महाप्रेम।
मोह मलिन अति दुर्दिन
शंकित-चित पान्थ,
जटिल-गहन पथसङ्कट
संशय-उद्भ्रान्त।
करुणामय मागि शरण
दुर्गति भय करह हरण
दाओ दुःख-बन्धतरण
मुक्तिर परिचय॥
महाशान्ति महाक्षेम
महापुण्य महाप्रेम॥❀

❀ (तुम) सब कलुष और अन्धकार को हरण करो, जय हो, तुम्हारी जय हो। (तुम) अमृत वारि से निखिल भुवन को सिंचित करो। (तुम) महाशान्ति, महाक्षेम, महापुण्य (और) महाप्रेम (-स्वरूप) हो। ज्ञान-सूर्य के उदय की आभा तिमिर-रात्रि का विध्वंस करे। दुःसह दुःस्वप्नों को नष्ट करके भय दूर करे। (तुम) महाशान्ति, महाक्षेम, महापुण्य, और महाप्रेम (-स्वरूप) हो। (आज) मोह से मलीन दुर्दिन है, राही शंकित-चित्त है, मार्ग का संकट अत्यन्त जटिल है, (इस लिये) संशय से उद्भ्रान्त हो रहा है। हे करुणामय, शरण दो, (तुम) दुर्गति और भय हरो। दुःख के बंधन को पार करने वाली मुक्ति का परिचय दो।

चतुर्थ अंक

अशोक तले। भग्न स्तूप

भग्नप्राय आसन-वेदी

रत्नावली। राजकिंकरियाँ। रक्षिणियों का एक दल।

पहली राजकिंकरी

राजकुमारी, हमें महल के काम में विलम्ब हो रहा है।

रत्नावली

जरा-सा और ठहरो। महारानी लोकेश्वरी स्वयं आकर देखना चाहती हैं। उन के न आने तक नाच आरम्भ नहीं हो सकता।

दूसरी राजकिंकरी

हम आप की आज्ञा से आई हैं। किन्तु अधर्म के भय से मन व्याकुल है।

तीसरी राजकिंकरी

यहीं पर प्रभु को पूजा दी है, और आज यहीं पर नटी का नाच देखें! छि छि! यह पाप कैसे धुलेगा?

चौथी राजकिंकरी

यहाँ पर इतना बड़ा घिनौना तमाशा होगा, यह मालूम न था। हम ठहर न सकेंगी, किसी तरह भी नहीं!

रत्नावली

अभागिनियों तुम ने सुना नहीं, बुद्ध की पूजा इस राज्य में बन्द कर दी गई है।

चौथी राजकिंकरी

राजा की अवज्ञा करना हमारे बस का नहीं। भगवान् की पूजा न की, न सही, किन्तु साथ ही उन का अपमान भी तो नहीं कर सकतीं।

पहली राजकिंकरी

राजमहल की नटी का नाच राजकन्याओं और राजबधुओं के लिए ही है। इस सभा में हम लोगों का क्या काम? चलो हम चलें, हमारा जहाँ स्थान है वहीं जायें।

रत्नावली

(रक्षिणियों से) जाने मत देना उन्हें। नटी को अब के शीघ्र ही बुला लाओ।

पहली किंकरी

राजकुमारी, यह पाप नटी को तो छुएगा नहीं। यह तुम्हें ही लगेगा।

रत्नावली

तुम क्या समझती हो कि तुम्हारे इस नूतन धर्म के नये गढ़े हुए पाप को मैं मानती हूं!

दूसरी किंकरी

मनुष्य की भक्ति का अपमान करना तो चिरंतन पाप है।

रत्नावली

मालूम पड़ता है कि तुम सभी को इस नटी साध्वी की हवा लग गई। मुझे पाप का भय न दिखलाना, मैं कोई छोटी बच्ची नहीं।

रक्षिणी

(पहली किंकरी से) वसुमति, हम लोगों ने श्रीमती की भक्ति की है। किन्तु यह भूल ही हुई। वह तो नाचने को राजी हो गई!

रत्नावली

राजी होगी नहीं; राजा के आदेश से डरेगी नहीं?

रक्षिणी

भय तो हम भी करती हैं, किन्तु—

रत्नावली

नटी का पद क्या तुम से ऊँचा है?

पहली किंकरी

हम तो उसे अब नटी नहीं समझती थीं। हम ने उस में स्वर्ग का आलोक देखा है।

रत्नावली

नटी स्वर्ग जाने पर भी नाचती है, क्या यह नहीं जानती हो!

रक्षिणी

श्रीमती पर पीछे कहीं राजा के आदेश से आघात न करना

पड़े, यह भय था ; किन्तु आज मालूम होता है कि राजा के आदेश की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं।

पहली किंकरी

उन पापिनियों की बात रहने दे! किन्तु इस पाप-दृश्य को देख दोनों आँखों को कलंकित करके हमारी क्या गति होगी?

रत्नावली

अभी तक नटी का साज पूरा नहीं हुआ! देखती हो, तुम्हारी इस नटी साध्वी को साज-बाज का कितना शौक है!

पहली किंकरी

यह आगई! उफ, देखती हो कैसा झलमल करती है!

दूसरी किंकरी

पाप-देह पर एक-सौ बातियों का प्रकाश जलाया है इसने!

श्रीमती का प्रवेश

पहली किंकरी

पापिष्ठा, श्रीमती! भगवान् के आसन के सामने, बेशरम, आज तू नाचेगी! तेरे दोनों पाँव सूख कर अभी काठ क्यों नहीं हो जाते?

श्रीमती

और कोई चारा नहीं, ऐसा ही आदेश है।

दूसरी राजकिंकरी

नरक में जाने पर सौ-लाख वर्ष तक जलते-बलते अँगारों के ऊपर तुझे दिन-रात नाचना पड़ेगा, यह मैं कहे देती हूं।

तीसरी राजकिंकरी

जरा देखो तो। पापिनी ने सिर से पैर तक अलंकार पहने हैं। प्रत्येक अलंकार आग की बेड़ी बन कर तेरे हाड़-मांस को जकड़े रहेगा, तेरी प्रत्येक नाड़ी में ज्वालाओं का श्रोत बहा देगा, सो जानती है ?

मल्लिका का प्रवेश

मल्लिका

(जनान्तिक—रत्नावली से) राज्य में बुद्ध-पूजा पर जो प्रतिबंध की घोषणा की गई थी वह अब उठा ली गई है। रास्ते-रास्ते पर दुंदुभी बजा कर उसी की घोषणा हो रही है। शायद यहाँ भी अभी आते ही हों, इसीलिए संवाद दे गई। एक संवाद और भी है। आज महाराज अजातशत्रु स्वयं यहां आकर पूजा करेंगे ; उसी के लिए तैयार हो रहे हैं।

रत्नावली

जरा दौड़ कर जाओ तो मल्लिका—महारानी लोकेश्वरी को शीघ्र बुला लाओ।

मल्लिका

वह तो, वे आ ही रही हैं !

लोकेश्वरी का प्रवेश

रत्नावली

महारानी, यह है आप का आसन।

लोकेश्वरी

ठहरो। श्रीमती से अकेले में मुझे कुछ कहना है। (श्रीमती को अलग बुलाकर) श्रीमती !

श्रीमती

क्या है महारानी !

लोकेश्वरी

यह ले, तेरे लिए लाई हूं।

श्रीमती

क्या लाई है ?

लोकेश्वरी

अमृत।

श्रीमती

कुछ समझी नहीं।

लोकेश्वरी

विष। इसे पी कर मर जा, परित्राण पायेगी।

श्रीमती

परित्राण का क्या कोई और उपाय नहीं समझतीं ?

लोकेश्वरी

ना। रत्नावली आगे ही जाकर राजा से तुम्हारे लिए नाच

का आदेश ले आई है। वह आदेश किसी तरह भी नहीं टाला जा सकता।

रत्नावली

महारानी, और समय नहीं, नृत्य अब आरम्भ हो।

लोकेश्वरी

यह ले, शीघ्र पी जा। यहाँ पर मर के स्वर्ग पायेगी, यहाँ पर नाचेगी तो जायेगी अवीचि नरक में।

श्रीमती

सब से पहले आदेश पालन कर लूं।

लोकेश्वरी

नाचेगी ?

श्रीमती

हाँ, नाचूंगी।

लोकेश्वरी

तुझे भय नहीं ?

श्रीमती

नहीं, कुछ नहीं।

लोकेश्वरी

तब तो कोई भी उद्धार न कर सकेगा।

श्रीमती

जो उद्धारकर्त्ता हैं, उन्हें छोड़ कर और कोई भी नहीं।

रत्नावली

महारानी, अब और एक भी मुहूर्त्त की देरी न चल सकेगी। बाहर गोलमाल नहीं सुन रही हो? शायद विद्रोही लोग अभी-अभी राजोद्यान में घुस पड़ेंगे। नटी, नाच शुरू हो!

(श्रीमती का गान और नाच)

आमाय क्षमोहे क्षमो, नमोहे नमः
तोमाय स्मरि, हे निरुपम,
नृत्यरसे चित्त मम
उछल ह'ये बाजे ॥
आमार सकल देहेर आकुल रवे
मन्त्रहारा तोमार स्तवे
डाहिने बामे छन्द नामे
नव जनमेर माझे।
तोमार बन्दना मोर भङ्गीते आज
सङ्गीते विराजे ॥*

---

* मुझे क्षमा करो हे, क्षमा करो, (तुम्हें) नमस्कार करती हूँ। हे निरुपम, तुम्हें स्मरण कर, मेरा चित्त नृत्य-रस में छलक कर बज उठता है। मेरी सारी देह के आकुल रव में, तुम्हारे मंत्र-हारा स्तव से, नव-जन्म के मध्य दाहिने बायें दोनो ओर से छन्द झरने लगते हैं। आज मेरी भाव भङ्गी में (और) सङ्गीत में तुम्हारी वन्दना विराज रही है।

रत्नावली

यह कैसा नाच ? यह तो नाच का स्वांग है। और इस गान का अर्थ क्या है ?

लोकेश्वरी

ना ना, बाधा न दे।

(गान और नाच)

ए कि परम व्यथाय पराण काँपाय
काँपन वक्षे लागे
शान्तिसागरे ढेउ खेले जाय
सुन्दर ताय जागे।
आमार सब चेतना सब वेदना
रचिल ए ये की आराधना,
तोमार पाये मोर साधना
मरे ना येन लाजे।
तोमार वन्दना मोर भङ्गीते आज
सङ्गीते विराजे ॥*

---

* यह क्या, परम व्यथा से प्राण काँप रहे हैं, वक्ष काँप रहा है ; शान्ति सागर में लहरें खेल रही हैं (और) उस में 'सुन्दर' प्रकट हो रहा है। मेरी सारी चेतना और सारी वेदना ने यह यह कैसी आराधना रच डाली है। तुम्हारे चरणों में मेरी साधना कहीं लज्जा से मर न जाय। आज मेरी भाव-भङ्गी में (और) सङ्गीत में तुम्हारी वन्दना विराज रही है।

रत्नावली

यह क्या हो रहा है? गहनों को एक एक ताल पर उस स्तूप की आवर्जना के बीच फेंकती जा रही है। यह गया कंकण, यह गया केयूर, यह गया हार। महारानी, देखती हैं यह सब राजघर के अलंकार हैं—यह कैसा अपमान! श्रीमती, यह मेरे अपनी देह के गहने हैं। बटोर कर सिर पर लगा, अभी जा, अभी।

लोकेश्वरी

शांत हो, शांत हो। उस का कोई दोष नहीं, इसी तरह आभरण निकाल कर फेंक देना ही तो इस नाच का मुख्य अंग है। आनन्द से मेरा शरीर दोलित हो उठा है। (गले पर से हार खोल कर फेंकती है) श्रीमती, रुक मत, चलती जा, चलती जा।

(गान और नाच)

आमि कानन ह'ते तुलिनि फूल,
मेलेनि मोरे फल।
कलस मम शून्य सम
भरिनि तीर्थ जल।
आमार तनु तनुते बाँधन हारा
हृदय ढाले अधरा-धारा,
तोमार चरणे होक् ता सारा
पूजार पुराय काजे।

तोमार बन्दना मोर भङ्गीते आज
सङ्गीते विराजे ॥❀

रत्नावली

यह नाच की कैसी विडंबना है! नटी का वेश एक एक कर फेंक दिया। देखती तो हो महारानी, भीतर से भिक्षुणी का पीत वस्त्र! इसी को पूजा कहते हैं न? रक्षिणियों, तुम देख रही हो। महाराज ने क्या दण्ड-विधान किया है याद नहीं?

रक्षिणी

श्रीमती ने तो पूजा का मंत्र पढ़ा नहीं।

श्रीमती

(घुटने टेक कर)

बुद्धं सरणं गच्छामि—

रक्षिणी

(श्रीमती के मुँह पर हाथ दे कर) थम, थम निडर, अब भी थम जा।

❀ मैं ने कानन से फूल नहीं चुने, फल मुझे नहीं मिला। अपने सूने-से कलश में तीर्थजल भी नहीं भरा। मेरे अंग-अंग में मेरा बंधन हीन हृदय न-धरी-जा-सकने-वाली धारा ढाल रहा है। वह पूजा के पुण्य कार्य में तुम्हारे चरणों पर अर्पित हो। आज मेरी भाव-भङ्गी में (और) मेरे सङ्गीत में तुम्हारी वन्दना विराज रही है।

रत्नावली

राजा के आदेश का पालन करो।

श्रीमती

बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि—

किंकरियाँ

ऐसा अनर्थ न कर श्रीमती, रुक जा, रुक जा!

रक्षिणी

मौत के मुँह में न जा, दीवानी!

दूसरी रक्षिणी

मैं हाथ जोड़ कर विनती करती हूं, हमारे ऊपर दया कर के शांत हो जा।

किंकरीगण

आँखों से यह न देख सकूंगी, न देख सकूंगी, हम लोग भाग चलें (पलायन)।

रत्नावली

राजा के आदेश का पालन करो।

श्रीमती

बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि।

लोकेश्वरी

(घुटने टेक कर साथ ही साथ) बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि।

(रक्षिणी के श्रीमती पर अस्त्राघात करते ही वह आसन के ऊपर गिर पड़ती है)

(क्षमा करो, क्षमा करो, कह-कह कर रक्षिणियाँ एक-एक कर श्रीमती के पावों की धूल लेती हैं)

लोकेश्वरी

(श्रीमती का सिर गोद में लेकर) **नटी, तू अपना यह भिक्षुणी का वस्त्र मुझे दे गई।** (वस्त्र का एक छोर माथे से छुआ कर) **यह मेरा है।**

(रत्नावली धूल पर बैठ जाती है)

मल्लिका

क्या सोचती हो ?

रत्नावली

(आँचल से मुँह ढँक कर) **अब मुझे भय हो रहा है।**

(प्रतिहारिणी का प्रवेश)

महाराज अजातशत्रु भगवान् की पूजा के लिए कानन-द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे हैं, देवियों की सम्मति चाहते हैं।

मल्लिका

चल, मैं महाराज को देवियों की सम्मति कह आऊं।

(मल्लिका का प्रस्थान)

लोकेश्वरी

कहो तुम सब—बुद्धं सरणं गच्छामि।

(रत्नावली को छोड़ कर बाकी सभी)

बुद्धं सरणं गच्छामि।

लोकेश्वरी

धम्मं सरणं गच्छामि।

(रत्नावली को छोड़ कर बाकी सभी)

धम्मं सरणं गच्छामि।

लोकेश्वरी

संघं सरणं गच्छामि।

(रत्नावली को छोड़ कर बाकी सभी)

संघं सरणं गच्छामि।

(रत्नावली को छोड़ कर बाकी सभी)

नित्थ मे सरणं अञ्ञं बुद्धो मे सरणं वरं।
एतेन सच्चवज्जेन होतु मे जयमङ्गलं॥

मल्लिका का प्रवेश

मल्लिका

महाराज आये नहीं, लौट गये।

लोकेश्वरी

क्यों ?

मल्लिका

संवाद सुन कर वे भय से काँप उठे।

लोकेश्वरी

उन्हें किस का भय है ?

मल्लिका

उस हतप्राण नटी का।

लोकेश्वरी

चलो पालकी ले आवें। इस की देह सभी को वहन कर के ले जानी होगी। (रत्नावली को छोड़ कर बाकी सब का प्रस्थान)

रत्नावली

(श्रीमती का पैर छू कर प्रणाम कहती है और घुटने टेक कर बैठती है) बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि।